रणबीर यादव

बनाम

बिहार राज्य

21 मार्च, 1995

[ए.एस. आनंद एवं एम.के. मुखर्जी, न्यायाधीशगण]

भारत का संविधान — अनुच्छेद 227 — उच्च न्यायालय की अधीक्षण शक्ति — दायरा — बड़ी संख्या में व्यक्तियों का विचारण — बेहतर व्यवस्था वाले बड़े न्यायालय में मामले का स्थानांतरण — क्या उच्च न्यायालय अपनी पूर्ण प्रशासनिक शक्ति के प्रयोग में न्यायोचित था — अभिनिर्धारित, हां।

अनुच्छेद 136 — तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप का दायरा।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 — धारा 326, 350, 216, 217 — मामले का स्थानांतरण — अभियुक्त का नए सिरे से विचारण का दावा करने का अधिकार — स्थानांतरिती न्यायालय अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग केवल पहले से परीक्षित साक्षी के आगे परीक्षण के लिए कर सकता है न कि नए विचारण के लिए साक्षियों के नए परीक्षण के लिए।

धारा 154, 161, 162 — प्राथमिकी — बलवे एवं हत्या की दो घटनाएं — उसी रात घटनाओं का अन्वेषण प्रारंभ हुआ — अगले प्रातः दर्ज की गई रिपोर्ट को केवल संहिता की धारा 161(3) के अनुसार अभिलिखित बयान के रूप में माना जा सकता है न कि प्राथमिकी के रूप में — साक्षी के साक्ष्य की ग्राह्यता।

भारतीय दंड संहिता, 1860 — धारा 148, 302/149, 436/149, 380 एवं 201/149 — लूट, आगजनी एवं हत्या के अपराध — प्रत्यक्षदर्शी साक्षी — विभिन्न गांवों के निवासियों

की 500/600 लोगों की भीड़ बिंद समुदाय को समूल नष्ट करने के लिए पड़ोसी गांव पर आई और उस पर हमला किया — यादव समुदाय से संबंधित तीन अपीलार्थी घोड़े पर सवार होकर आग्नेयास्त्रों से लैस होकर आए और भीड़ का नेतृत्व किया, ग्रामवासियों का पीछा किया और हत्याएं कीं — अपराधों के लिए उनकी दोषसिद्धि बरकरार रखी गई।

अभियोजन के अनुसार कुछ गांवों के बीच भूमि विवाद के कारण, एक पड़ोसी गांव के निवासी यादव समुदाय के लगभग 30/40 सदस्य गांव में आए और बिंदों को गाली देने लगे, बंदूकों से गोलीबारी करके कुछ लोगों को घायल किया और यह धमकी देकर चले गए कि बिंद समुदाय के सभी सदस्यों को मार दिया जाएगा; कि उसी दिन दोपहर लगभग 1 बजे बंदूकों, पिस्तौलों, भालों एवं लाठियों जैसे हथियारों से लैस लगभग 600 यादवों की भीड़ — उनमें से कुछ घोड़े पर — आई और गांव की बिंद टोली पर हमला किया; कि भीड़ ने नकद, कपड़े, अनाज, आभूषण एवं मवेशी लूटे और तत्पश्चात वहां के निवासियों के घरों में आग लगा दी, भीड़ के कुछ सदस्यों ने उन ग्रामवासियों का पीछा किया जो नदी की ओर भागने की कोशिश कर रहे थे और जब ये लोग नावों पर सवार होकर बचने का प्रयास कर रहे थे तो दुर्जनों ने उन पर गोली चलाई, उन्हें नावों से नीचे उतारा और फिर उन्हें घसीटकर नदी में फेंक दिया; कि तीनों अपीलार्थी घोड़े पर सवार होकर बंदूकों के साथ आए, भीड़ का नेतृत्व किया और तबाही में सक्रिय भागीदार रहे; कि सूचना मिलने पर उसी रात एक पुलिस दल वहां गया और अभियोजन साक्षी-96, एक पुलिस निरीक्षक ने, पहली घटना पर पंजीकृत मामलों का अन्वेषण प्रारंभ किया और अगले प्रातः उसने दूसरी घटना का भी अन्वेषण प्रारंभ किया। नौ मारे गए लोगों में से छह के शव बरामद हुए। पहली घटना पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148 एवं 149/307 और शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत छह अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया। दूसरी घटना के संबंध में भी दो मामले पंजीकृत किए गए, एक उसी रात भारतीय दंड संहिता की धारा 148, 149/302, 201, 436 एवं 320 के अंतर्गत और दूसरा अगले प्रातः भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149,

307, 380, 436, 147, 148, 149, 201 एवं 120-ख तथा शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत। ये दोनों मामले तीनों अपीलार्थियों एवं कुछ फरारों सहित 152 अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र में परिणत हुए।

सत्र न्यायालय को सुपुर्द मामले विचारण के लिए 10वें न्यायालय को स्थानांतरित किए गए और दो मामलों के समामेलन के उपरांत छह अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए। तत्पश्चात दोनों मामले अपर सत्र न्यायाधीश के 5वें न्यायालय में स्थानांतरित कर दिए गए क्योंकि कुछ अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा एक याचिका दायर की गई जिसमें कहा गया कि जब आरोप विरचन के प्रश्न पर सुनवाई के लिए 10वें न्यायालय ने सत्र विचारण प्रारंभ किया तो सभी अभियुक्त उनके लिए निर्मित कटघरे में नहीं समा सके जिसके परिणामस्वरूप उनमें से कुछ को बाहर रहना पड़ा और एक अभियुक्त जो गंभीर रूप से बीमार था और चारपाई पर लाया गया था उसे न्यायालय कक्ष के बरामदे में रखना पड़ा और न्यायालय इतना भीड़भाड़ वाला था कि अधिवक्ताओं के लिपिकों को प्रवेश नहीं दिया गया और वास्तव में अधिवक्ताओं को स्वयं अभिलेख ले जाने पड़े। इस याचिका का निपटान करते समय 5वें न्यायालय ने एक आदेश अभिलिखित किया कि सभी प्रकार की त्रुटियों एवं अनियमितताओं से बचने के लिए उन दो फरार अभियुक्तों सहित, जो इस बीच समर्पण कर चुके थे, सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप नए सिरे से विरचित किए जाएंगे। इस आदेश के अनुसरण में अब भारतीय दंड संहिता की धारा 364/149 एवं 201/149 के अंतर्गत आरोप जोड़े गए और तीन फरार अभियुक्त व्यक्ति जो पूर्व न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किए जाने के बाद से समर्पण कर चुके थे, आरोपों में भी सम्मिलित किए गए। जिन चार साक्षियों की पहले परीक्षा, प्रति-परीक्षण और तत्पश्चात आगे प्रति-परीक्षण के लिए 10वें न्यायालय द्वारा उन्मोचित किया गया था, उन्हें यह विचार करते हुए कि उनका परीक्षण सभी 140 अभियुक्तों की उपस्थिति में नहीं हुआ था क्योंकि उनमें से तीन उनके साक्ष्य अभिलिखित होने के बाद समर्पण किए थे, नए सिरे से परीक्षित किए जाने का निर्देश दिया गया। इस आदेश के विरुद्ध दायर एक

पुनरीक्षण आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा इस निर्देश के साथ निपटाया गया कि यदि बचाव पक्ष उन चार साक्षियों के प्रति-परीक्षण के लिए आवेदन करे, तो न्यायालय उनके प्रति-परीक्षण का आदेश दे सकता है और यदि न्यायालय अनुभव करे कि मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए कोई आगे का साक्ष्य आवश्यक है, तो वह उन्हें न्यायालय में बुला सकता है। विचारण की समाप्ति पर न्यायालय ने उनमें से 78 को दोषमुक्त किया और अन्य 60 को सभी या कुछ आरोपों के संबंध में दोषसिद्ध एवं दंडित किया। तीनों अपीलार्थियों में से प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, 148, 302/149, 436/149, 380 एवं 201/149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया। अपील पर, उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अपराधों को छोड़कर तीनों अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की। अतः ये अपीलें दायर की गई हैं।

अपीलार्थियों ने यह तर्क दिया कि 5 वें न्यायालय में हुआ विचारण पूर्णतः क्षेत्राधिकार-विहीन था क्योंकि उच्च न्यायालय के पास 10 वें न्यायालय से 5 वें न्यायालय में मामले को स्थानांतरित करने की शक्ति नहीं थी और वह भी प्रशासनिक आदेश द्वारा उस अवस्था में जब विचारण पहले ही प्रारंभ हो चुका था; कि प्रशासनिक शक्ति उस अवस्था में प्रयुक्त नहीं की जा सकती जब न्यायिक शक्ति न केवल उपलब्ध एवं क्रियाशील थी बल्कि समान रूप से प्रभावी एवं कारगर भी थी; कि इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि 5 वें न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा उन तीन सहित जो बाद में समर्पण के उपरांत विचारण पर रखे गए, अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध नए सिरे से आरोप विरचित करने का निर्णय किया और उसके अनुसरण में आरोप विरचित किए और विचारण के साथ आगे बढ़ा, 10 वें न्यायालय द्वारा संचालित पूर्ववर्ती विचारण समाप्त हो गया माना जाना चाहिए, और उसमें परीक्षित चार साक्षियों के साक्ष्य पर आक्षेपित दोषसिद्धि एवं दंडादेश के आदेश को अभिलिखित करने के लिए 5 वें न्यायालय द्वारा अवलंब नहीं किया जा सकता था; कि एक बार जब विचारण न्यायालय ने नया विचारण करने के लिए अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग कर लिया, तो उसमें उच्च न्यायालय का

हस्तक्षेप न केवल संहिता की धारा 397(2) के निषेध के दृष्टिगत अनुज्ञेय नहीं था बल्कि गुण-दोष के आधार पर भी असंधार्य था; कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य उनकी दोषसिद्धि को न्यायोचित नहीं ठहराता और दोनों अधीनस्थ न्यायालयों को अभियोजन साक्षी-1 के साक्ष्य पर विचार एवं अवलंब नहीं करना चाहिए था क्योंकि वह अग्राह्य था इस विचार से कि साक्षी को उस रिपोर्ट से अपनी स्मृति ताजा करने की अनुमति दी गई जो उसने प्रातः पुलिस के पास दर्ज कराई थी जिसे दूसरी घटना की प्राथमिकी के रूप में माना गया था यद्यपि इसे ऐसा नहीं माना जा सकता था क्योंकि अभियोजन साक्षी-96 ने पूर्व रात्रि ही उसका अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था; और इसलिए भी कि अभियोजन मामला, जहां तक नाव पर भागने का प्रयास कर रहे ग्रामवासियों पर हमले से संबंधित था, बिल्कुल असत्य था क्योंकि यद्यपि अभियोजन साक्षियों ने दावा किया कि नाव पर कब्जा करने और उसके यात्रियों को उतारने के बाद बलवाइयों ने उन पर गोली चलाई तथापि उनके शव नदी से बरामद हुए जबकि वे तिसरासिया ढाब में ही मिलने चाहिए थे; और इसलिए भी कि दूसरी घटना के बारे में गवाही देने वाले प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य अत्यधिक विसंगतिपूर्ण एवं अविश्वसनीय था और इसलिए उस पर अवलंब नहीं किया जाना चाहिए था।

अपीलें खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1.1 भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, समस्त न्यायालयों एवं अधिकरणों पर अधीक्षण प्राप्त है और यह सुस्थापित है कि अधीक्षण की यह शक्ति उच्च न्यायालय को प्रशासनिक आवश्यकता एवं औचित्य के लिए आदेश पारित करने का अधिकार देती है। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने स्थानांतरण की शक्ति कुछ अभियुक्तों द्वारा जेल से दायर उस याचिका के संदर्भ में प्रयुक्त की जिसमें उन्होंने शिकायत की थी कि न्यायालय कक्ष में उन्हें समायोजित नहीं किया जा सका जिसके परिणामस्वरूप उनमें

से कुछ को बाहर रहना पड़ा। उठाई गई अन्य शिकायत यह थी कि न्यायालय इतना भीड़भाड़ वाला था कि अधिवक्ताओं के लिपिकों को भी संक्षिप्त विवरण लेकर न्यायालय कक्ष में प्रवेश नहीं करने दिया जा रहा था। ऐसी स्थिति स्पष्टतः बड़ी संख्या में व्यक्तियों के विचारण के कारण उत्पन्न हुई थी। यदि उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने मामले को 5 वें न्यायालय में स्थानांतरित करने की अपनी पूर्ण प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग किया, जिसमें अभियुक्तों, अधिवक्ताओं एवं विचारण से संबंधित अन्य लोगों को समायोजित करने की बड़ी एवं बेहतर व्यवस्था थी, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, विशेष रूप से उन लोगों द्वारा जिनके अनुरोध पर एवं जिनके लाभ के लिए शक्ति का प्रयोग किया गया था। जब तक शक्ति का प्रयोग केवल प्रशासनिक आवश्यकता के लिए किया जा सकता है और किया जाता है बिना किसी न्यायिक कार्यवाही में पक्षकारों के अधिकारों या हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि प्रशासनिक शक्तियों को न्यायिक शक्तियों को स्थान देना होगा केवल इसलिए कि किसी दी गई परिस्थिति में वे सह-अस्तित्व में हैं। इसके विपरीत, वर्तमान मामला यह दर्शाता है कि प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार अधिक समीचीन, प्रभावी एवं कारगर था। यदि उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 407 को लागू करते हुए अपनी न्यायिक स्थानांतरण शक्तियों का प्रयोग करने का आशय रखा होता तो इसके लिए उसकी सभी प्रक्रियागत औपचारिकताओं के अनुपालन की आवश्यकता होती, इसके अलावा पक्षकारों को उचित सुनवाई के पर्याप्त अवसर प्रदान करने पड़ते जिसके परिणामस्वरूप न केवल विचारण में विलंब होता बल्कि कुछ अभियुक्तों की और अधिक निरुद्धता भी होती। अतः यह स्पष्ट है कि न्यायिक शक्तियों के स्थान पर अपनी अधीक्षण शक्ति का प्रयोग करके, उच्च न्यायालय ने न केवल अभियुक्तों एवं विचारण से संबंधित अन्य लोगों की शिकायतों का निवारण किया बल्कि इसे अत्यंत शीघ्रता से किया। [838-छ-ज, 839-क-ख-घ-च]

1.2 5 वें न्यायालय द्वारा नए सिरे से आरोप विरचित करने और अभियोजन को उसकी ओर से परीक्षित किए जाने वाले साक्षियों की सूची प्रस्तुत करने का निर्देश देने के लिए जो प्राथमिक कारण महत्वपूर्ण थे, वे यह थे कि आरोप विरचित होने के उपरांत तीन अभियुक्तों ने समर्पण किया था और अभियोजन के चार साक्षियों की मुख्य-परीक्षण हो चुकी थी और उनमें से तीन को प्रति-परीक्षण के उपरांत उन्मोचित किया जा चुका था तथा अभियुक्त व्यक्तियों के बचाव में पूर्वाग्रह हुआ था क्योंकि विचारण के प्रथम दिन उनकी ओर से उनके अपनी पसंद के अधिवक्ता के स्थान पर बचाव पैनल का एक अधिवक्ता उपस्थित हुआ था। अतः वर्तमान अपीलार्थियों एवं उनके साथ विचारण किए जा रहे अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध 5 वें न्यायालय द्वारा नए सिरे से आरोप विरचित करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ और न हो सकता था और वास्तव में उनके विरुद्ध केवल अतिरिक्त आरोप विरचित किए गए। अतः 5 वें न्यायालय के नए सिरे से आरोप विरचन के संबंध में दिए गए निर्देश को उन तीन के संदर्भ में पढ़ा एवं अर्थान्वित किया जाना चाहिए जो बाद में समर्पण किए थे। जहां तक उन तीन अभियुक्तों का संबंध है, स्वीकार्यतः वे 10 वें न्यायालय में विचारण प्रारंभ होने के समय उपस्थित नहीं थे और इसलिए 5 वां न्यायालय न केवल उनके विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए विधिक रूप से बाध्य था, बल्कि पहले से परीक्षित चार साक्षियों के साक्ष्य को नए सिरे से अभिलिखित करने के लिए भी, यदि अभियोजन उसे उनके विरुद्ध उपयोग करना चाहता था, क्योंकि संहिता की धारा 299 एवं अन्य धाराओं में उपबंधित असाधारण मामलों को छोड़कर, संहिता की धारा 273 के दृष्टिगत सभी साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में, अथवा जब व्यक्तिगत उपस्थिति माफ कर दी जाए, उसके अधिवक्ता की उपस्थिति में लिए जाने चाहिए। अतः वे तीन अभियुक्त उनके विरुद्ध उन चार साक्षियों के साक्ष्य की स्वीकृति एवं उस पर अवलंब को वैधानिक रूप से एवं सफलतापूर्वक चुनौती दे सकते थे। तथापि, तीनों अपीलार्थियों को ऐसी कोई भी समान शिकायत उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी क्योंकि उन साक्षियों की परीक्षा उनकी उपस्थिति में की गई थी और उनके अपनी पसंद के

अधिवक्ताओं द्वारा विस्तृत एवं संपूर्ण रूप से प्रति-परीक्षण किया गया था और इसलिए उन्हें कोई पूर्वाग्रह हुआ नहीं कहा जा सकता। आरोप के परिवर्तन या जोड़ने के उपरांत अभियोजन एवं अभियुक्त के हित की रक्षा उन्हें पहले से परीक्षित साक्षी की आगे परीक्षा या प्रति-परीक्षा करने की अनुमति देकर, यथास्थिति, और उन्हें अन्य साक्षियों को बुलाने का अवसर प्रदान करके की जानी चाहिए। न्यायालय को किसी आरोप के जोड़ने या परिवर्तन के उपरांत नए विचारण का निर्देश देने का विवेकाधिकार दिया गया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि आरोप में प्रत्येक ऐसे जोड़ या परिवर्तन से, जो अभियुक्त को पढ़कर सुनाया एवं समझाया गया हो, यह अनिवार्य निष्कर्ष निकले कि न्यायालय ने उनके लिए नए विचारण का निर्देश दिया था। जब तक न्यायालय कोई सुभिन्नत आदेश पारित न करे और नए विचारण का निर्देश न दे, यह नहीं माना जा सकता कि नया विचारण प्रारंभ हो गया है केवल इसलिए कि अभियुक्त को पढ़कर सुनाए एवं समझाए गए आरोप में परिवर्तन या जोड़ किया गया है। दिनांक 30 अप्रैल, 1987 का आदेश दर्शाता है कि अभियोजन को 4 साक्षियों को नए सिरे से परीक्षित करने का निर्देश देते हुए 5वें न्यायालय ने मामले को आगे के विचारण के लिए स्थगित किया और नए विचारण का निर्देश नहीं दिया। इसके अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा दिया गया ऐसा कोई भी निर्देश अभियुक्त या अभियोजन के प्रति पूर्वाग्रह की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। [845-ङ-ज, 846-क-ग, 847-घ-च]

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार में बैठते हुए यह न्यायालय संपूर्ण मामले को पुनः खोलने और साक्ष्य के शुद्ध मूल्यांकन पर अभिलिखित तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को विचलित करने में न्यायोचित नहीं होगा, जब तक कि यह अभिनिर्धारित न किया जाए कि वे निष्कर्ष विधि के अनिवार्य उपबंधों की पूर्ण अवहेलना में अभिलिखित किए गए हैं जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को गंभीर पूर्वाग्रह एवं पर्याप्त अन्याय हुआ है। हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराने का अन्य क्षेत्र वह होगा जहां सिद्ध तथ्यों पर विधि का गलत निष्कर्ष निकाला गया हो अथवा तथ्यों पर निष्कर्ष स्पष्टतः विकृत हों

और किसी साक्ष्य पर आधारित न हों। अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा एक समवर्ती निष्कर्ष अभिलिखित किया गया है कि छह यादव गांव में आग्नेयास्त्रों सहित विभिन्न हथियारों से लैस होकर आए, बलवा किया, दो पर गोलीबारी करके उन्हें घायल करके उनकी हत्या का प्रयास किया और तत्पश्चात ग्रामवासियों को यह खुली धमकी देकर चले गए कि बिंद समुदाय के सदस्यों को समाप्त कर दिया जाएगा। [851-छ-ज, 852-छ-ज]

3. अधीनस्थ न्यायालय प्रदर्श 10/1 को प्राथमिकी के रूप में मानने में न्यायोचित नहीं थे। निर्विवाद रूप से अभियोजन साक्षी-96 प्रातः घटित घटना पर पंजीकृत दो मामलों का अन्वेषण करने के लिए दिनांक 11.11.1985 की रात गांव पहुंचे थे। उन्होंने अभिसाक्ष्य दिया कि रात्रि 10:30 बजे गांव पहुंचने के उपरांत उन्हें दूसरी घटना के बारे में भी जानकारी मिली और उसके संबंध में उन्होंने कई व्यक्तियों से बात की। तथापि, उन्होंने कहा कि उन्होंने जिन व्यक्तियों से बात की उनके बयान अभिलिखित नहीं किए। प्रति-परीक्षण में उनसे यह निकलवाया गया कि उसी रात उन्हें पता चला कि कुछ लोगों के घर लूटे गए और जलाए गए, कुछ लोगों की हत्या हुई और कुछ ग्रामवासी लापता हैं। आगे प्रति-परीक्षण किए जाने पर उन्होंने स्वतः कहा कि उन्होंने उसी रात दूसरी घटना पर पंजीकृत मामले का अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था। अभियोजन साक्षी-96 के ऐसे स्वीकरणों एवं दूसरी घटना के संबंध में उनके द्वारा उठाए गए अन्वेषण के विभिन्न कदमों के मद्देनजर इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि अगले प्रातः अभियोजन साक्षी-1 द्वारा दर्ज कराई गई रिपोर्ट को केवल संहिता की धारा 161(3) के अनुसार अभिलिखित बयान के रूप में माना जा सकता है न कि प्राथमिकी के रूप में। जब अभियोजन साक्षी-1 ने घटना के बारे में साक्ष्य दिया तो अभियोजन ने अभियोजन साक्षी-1 के बयान को प्रदर्श 10/1 के रूप में प्रदर्शित करवाया क्योंकि उसके अनुसार प्रदर्श 10/1 प्राथमिकी थी। ऐसा अभिगम साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के दृष्टिगत साक्षी की संपुष्टि करने के लिए अभियोजन को विधिक रूप से अनुज्ञेय था। किसी दिए गए मामले में — जैसा वर्तमान मामले में है — न्यायालय परवर्ती सामग्री के आधार पर

यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि इस प्रकार अभिलिखित बयान को प्राथमिकी के रूप में नहीं माना जा सकता और संहिता की धारा 162 के दृष्टिगत संपुष्टि के साक्ष्य के रूप में उसे अपने विचार से बाहर कर सकता है किंतु उस आधार पर अकेले किसी साक्षी के साक्ष्य को अग्राह्य नहीं माना जा सकता। [855-क-घ, 856-छ-ज]

4. नदी में शवों का पाया जाना, अभियोजन के इस मामले का खंडन नहीं करता कि उन दो व्यक्तियों पर तिसरासिया ढाब में गोली चलाई गई थी क्योंकि अभिलेख पर यह साक्ष्य था कि जिन लोगों पर गोली चलाई गई थी उन सहित सभी 10 व्यक्तियों को नदी के किनारे ले जाया गया था, दोनों स्थानों के बीच घसीटने के निशान पाए गए थे। [857-ङ]

5. प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के समूह का साक्ष्य — जिस पर दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने विचार किया एवं स्वीकार किया — ने निर्णायक रूप से सिद्ध किया कि तीनों अपीलार्थियों ने लूट, आगजनी एवं हत्या कारित करने और हत्या के साक्ष्य को विलुप्त कराने के अपराध कारित करने के विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को साझा किया और उन सामान्य उद्देश्यों के अग्रसरण में उस विधिविरुद्ध जमाव के कुछ सदस्यों ने वे अपराध कारित किए जिनके लिए अपीलार्थी भी भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किए जाने के दायित्वाधीन थे। उनके साक्ष्य को स्थानांतरित करने एवं दिनांक 11.11.1985 की अपराह्न घटित घटना से पूर्व की घटनाओं की पृष्ठभूमि में उस पर विचार करने के उपरांत निम्नलिखित निष्कर्ष अनिवार्य थे: (i) 500/600 लोगों की भीड़, जिनमें से अधिकांश यादव समुदाय के थे और विभिन्न गांवों के निवासी थे, बिंद समुदाय को समूल नष्ट करने के लिए पड़ोसी गांव पर आई और उस पर हमला किया; (ii) तीनों अपीलार्थी जो यादव समुदाय से संबंधित थे और तीन अलग-अलग आसन्न गांवों के निवासी थे, घोड़े पर सवार होकर आग्नेयास्त्रों से लैस होकर आए और कुछ अन्य लोगों के साथ भीड़ का नेतृत्व किया; और (iii) अपीलार्थी भी उन बलवाइयों में थे जिन्होंने ग्रामवासियों का पीछा किया और तिसरासिया

ढाब एवं नदी के किनारे हत्याएं कीं। अतः, अपीलार्थियों की आक्षेपित दोषसिद्धि बरकरार रखी जानी चाहिए। [862-घ-ज]

ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और एक अन्य, **[1988] 2 एससीसी 602;** *केहर सिंह बनाम राज्य,* **[1988] 3 एससीसी 609;** *प्यारे लाल बनाम पंजाब राज्य,* **[1962] 3 एससीआर 328 और** *ज़ाहिरुद्दीन बनाम सम्राट,* **एआईआर (1947) पी.सी. 75, सुभिन्नत।**

पुलुकुरी कोटाय्या बनाम किंग इम्पेरर, **एआईआर (1947) पीसी 67 और** *शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य,* **एआईआर (1973) एस.सी. 2622 अवलंबित।**

बाजवा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **[1973] 3 एस.सी.आर. 571, संदर्भित।**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः 1992 की आपराधिक अपील सं. 34, 35 और 36।

पटना उच्च न्यायालय के आपराधिक अपील सं. 183, 166 एवं 165/1989 में दिनांक 23.5.91 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से राम जेठमलानी, सुश्री लता कृष्णमूर्ति और बभाष कुमार यादव।

उत्तरदातओं की ओर से एम.एल. अग्रवाल, एस.के. पात्री और बी.बी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय

न्यायमूर्ति एम.के. मुखर्जी द्वारा सुनाया गया।

ये तीन अपीलें दो संबंधित घटनाओं से उद्भूत हैं जो दिनांक 11 नवंबर, 1985 को बिहार राज्य में मुंगेर मुफस्सिल थाने के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत ग्राम लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली एवं उसके पड़ोस में घटित हुईं। घटनाओं का विवरण देने एवं उनसे संबंधित अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की विवेचना करने से पूर्व, अपीलार्थियों की ओर से विचारण की वैधता

एवं उसमें कुछ अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य की ग्राह्यता के संबंध में उठाए गए तर्कों की सराहना करने के लिए विचारण की ओर ले जाने वाली घटनाओं के अनुक्रम का वर्णन करना आवश्यक होगा।

प्रातः लगभग 6 बजे घटित पहली घटना पर दो मामले पंजीकृत किए गए, यथा — मुंगेर मुफस्सिल थाना मामला सं. 302 एवं 303/1985 और संयुक्त अन्वेषण के उपरांत भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148 एवं 149/307 और शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत छह अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र दाखिल किया गया। दूसरी घटना के संबंध में, जो मध्याह्न में प्रारंभ हुई और सायंकाल तक चली, दो मामले पंजीकृत किए गए: एक उसी रात एक जानकी बिंद के बयान पर भारतीय दंड संहिता की धारा 148, 149/302, 201, 436 एवं 320 के अंतर्गत मामला सं. 304/1985 के रूप में और दूसरा अगले प्रातः एक महेंद्र सिंह के बयान पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149, 307, 380, 436, 147, 148, 149, 201 एवं 120-ख तथा शस्त्र अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत मामला सं. 305/1985 के रूप में। ये दोनों मामले भी संयुक्त अन्वेषण के उपरांत वर्तमान तीनों अपीलार्थियों एवं कुछ फरारों सहित 152 अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप-पत्र में परिणत हुए।

दूसरी घटना से संबंधित मामला दिनांक 28 जनवरी, 1986 को सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया और सुपुर्दगी के आदेश की प्राप्ति पर विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इसे विचारण के लिए अपर सत्र न्यायाधीश के 10वें न्यायालय (संक्षेप में 10वां न्यायालय) को स्थानांतरित कर दिया (सत्र विचारण सं. 10/1986)। तत्पश्चात दिनांक 25 फरवरी, 1986 को 10वें न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149, 436/149, 120-ख एवं 380/149 के अंतर्गत आरोपों सहित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विभिन्न आरोप विरचित किए और जब उन्होंने अपने को दोषी न होना अभिवचन किया, तो दिनांक 4 मार्च, 1986 से

अभियोजन साक्षियों का साक्ष्य अभिलिखित करना प्रारंभ किया। इस बीच पहली घटना से संबंधित मामला भी सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया जा चुका था और दिनांक 3 मार्च, 1986 को विचारण के लिए उसी न्यायालय को स्थानांतरित किया गया (सत्र विचारण सं. 83/1986)।

दिनांक 5 मार्च, 1986 को फरार अभियुक्तों में से एक ने 10वें न्यायालय के समक्ष समर्पण किया और अन्य अभियुक्तों के साथ विचारण किए जाने की प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकार की गई और उसके विरुद्ध दोनों मामलों में आरोप विरचित किए गए। तत्पश्चात कुछ अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से दोनों विचारणों के समामेलन के लिए एक आवेदन किया गया जिसे 10वें न्यायालय ने दिनांक 7 मार्च, 1986 के अपने आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया। ऐसे समामेलन के उपरांत न्यायालय ने सत्र विचारण सं. 83/1986 के छह अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 148, 307/149 एवं 307 के अंतर्गत आरोप विरचित किए और विचारण प्रारंभ किया। उसने तीनों अपीलार्थियों सहित सत्र विचारण सं. 10/1986 के 140 अभियुक्त व्यक्तियों और अन्य विचारण में सम्मिलित छह अभियुक्तों का विचारण भी जारी रखा। जब 10वें न्यायालय में विचारण चल रहे थे, उच्च न्यायालय ने अप्रैल 1986 के आसपास दोनों मामलों को विचारण के लिए अपर सत्र न्यायाधीश, मुंगेर के 5वें न्यायालय (संक्षेप में 5वां न्यायालय) में स्थानांतरित करने का आदेश पारित किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के आदेशानुसार दोनों सत्र विचारणों के अभिलेख 5वें न्यायालय को भेजे जाने के उपरांत, दिनांक 16 अप्रैल, 1986 को उसका ध्यान कुछ अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा जेल से भेजी गई एक याचिका की ओर आकर्षित किया गया। उस याचिका में कहा गया था कि दिनांक 25 फरवरी, 1986 को जब सत्र विचारण सं. 10/1986 को आरोप विरचन के प्रश्न पर सुनवाई के लिए 10वें न्यायालय ने प्रारंभ किया तो सभी अभियुक्त उनके लिए निर्मित कटघरे में नहीं समा सके जिसके परिणामस्वरूप उनमें से

कुछ को बाहर रहना पड़ा। उसमें यह भी कहा गया था कि एक अभियुक्त, यथा — बंसराज यादव जो गंभीर रूप से बीमार था और चारपाई पर लाया गया था उसे न्यायालय कक्ष के बरामदे में रखना पड़ा और न्यायालय इतना भीड़भाड़ वाला था कि विद्वान अधिवक्ताओं के लिपिकों को प्रवेश नहीं दिया गया और वास्तव में अधिवक्ताओं को स्वयं अभिलेख ले जाने पड़े। याचिका में यह भी आरोप लगाया गया था कि विचारण न्यायालय (10वां न्यायालय उस समय विचारणों के अधिग्रहण में था) ने उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया।

उपर्युक्त याचिका का निपटान करते हुए 5वें न्यायालय ने एक आदेश अभिलिखित किया कि सभी प्रकार की त्रुटियों एवं अनियमितताओं से बचने और सामान्यतः अभियुक्तों की शिकायतों के निवारण के लिए लखन यादव एवं नागेश्वर यादव (दो फरार अभियुक्त जो इस बीच समर्पण कर चुके थे) सहित सभी अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप नए सिरे से विरचित किए जाएंगे। आदेश में आगे निम्नानुसार पढ़ा जाता है:-

> "...... मुझे यह इंगित करना होगा कि विद्वान विशेष लोक अभियोजक ने प्रस्तुत किया है कि आरोप अभियुक्त व्यक्तियों को समझाए गए थे। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि उक्त याचिका को अनिपटा रहने दिया जाए, तो भविष्य में, विशेषकर विचारण के अंत में जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं और इस प्रकार अभियुक्त व्यक्तियों के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के, विशेष परिस्थितियों में सभी अभियुक्त व्यक्तियों को आरोप नए सिरे से समझाना उचित, नियमित एवं समीचीन है; इसे दृष्टिगत रखते हुए कि विचारण के प्रथम दिन ही बचाव पैनल से एक अधिवक्ता की नियुक्ति के संबंध में अभियुक्तों की ओर से विरोध था और इसे दृष्टिगत रखते हुए कि अभियुक्त व्यक्तियों ने पूर्व न्यायालय द्वारा नियुक्त बचाव अधिवक्ता में विश्वास नहीं जताया और इसे भी दृष्टिगत रखते हुए कि उन्होंने पुनः यह कहा कि उनके द्वारा नियुक्त अधिवक्ताओं की अनुपस्थिति के कारण उन्हें पूर्वाग्रह हुआ है।

अभियुक्तों की आशंकाएं सुदृढ़ नहीं हो सकती हैं किंतु न्यायालय को विधि द्वारा अपेक्षित प्रक्रिया अपनानी होगी ताकि कोई भी पक्ष न्यायालय के कामकाज के प्रति किसी प्रकार का पूर्वाग्रह महसूस न करे। दोनों पक्षों का न्यायालय के कामकाज में विश्वास किसी भी मामले के उचित विचारण के लिए सर्वोपरि तत्व है।

इस न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण मामले के विचारण के लिए अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में सभी प्रकार की त्रुटियों एवं अनियमितताओं, यदि कोई हो, को दूर करने का प्रयास किया है। यह आदेश किसी भी पक्ष को प्रतिकूलतः प्रभावित नहीं करेगा। विचारण के लिए तैयार किए गए उन अभियुक्तों सहित सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध नए सिरे से आरोप विरचित करने के लिए 27.4.86 को। विद्वान विशेष लोक अभियोजक को निर्देश दिया जाता है कि 30.4.86 को एवं मई 1986 के आवंटित कार्य दिवसों पर परीक्षित किए जाने वाले साक्षियों की सूची प्रस्तुत करें, 26.4.86 को न्यायालय में अभियुक्त नागेश्वर यादव एवं लखन यादव को प्रस्तुत करने के लिए उत्पादन वारंट भेजें।"

ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में आरोप नए सिरे से विरचित किए गए इस अर्थ में कि (i) भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के साथ पठित 149 एवं 201 के साथ पठित 149 के अंतर्गत नए आरोप जोड़े गए; (ii) तीन फरार अभियुक्त व्यक्ति जो पूर्व न्यायालय द्वारा आरोप विरचित किए जाने के बाद से समर्पण कर चुके थे, आरोपों में भी सम्मिलित किए गए और (iii) सभी आरोप अभियुक्तों को नए सिरे से समझाए गए।

तत्पश्चात, जब विचारण न्यायालय अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्षियों की परीक्षा कर रहा था, दिनांक 24 अप्रैल, 1987 को उसकी ओर से एक आवेदन दाखिल किया गया जिसमें कहा गया कि अभियोजन साक्षी-1 महेंद्र सिंह, अभियोजन साक्षी-3 नागेंद्र सिंह, अभियोजन साक्षी-4 राम चंद्र सिंह को 137 अभियुक्तों की ओर से एवं उनके द्वारा परीक्षा एवं प्रति-परीक्षण

के उपरांत उन्मोचित किया गया था और अभियोजन साक्षी-2 सुखदेव सिंह का प्रति-परीक्षण कुछ अभियुक्तों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध पर स्थगित किया गया था। उसमें आगे यह भी कहा गया था कि चूंकि स्थानांतरिती न्यायालय में आरोप पुनर्गठित किए गए थे, अभियोजन उन चार साक्षियों को, जो पहले पूर्व न्यायालय में परीक्षित, प्रति-परीक्षित और तत्पश्चात उन्मोचित किए जा चुके थे, आगे प्रति-परीक्षण के लिए प्रस्तुत करने को तैयार था। आवेदन पर अपने प्रतिउत्तर में अभियुक्त व्यक्तियों ने कहा कि उक्त चार साक्षियों जो पूर्व न्यायालय में परीक्षित हुए थे, की मुख्य-परीक्षण पुनः सभी अभियुक्तों की उपस्थिति में की जानी चाहिए और तभी बचाव पक्ष उनका प्रति-परीक्षण करेगा। आवेदन का निपटान करते समय 5 वें न्यायालय ने अभिमत व्यक्त किया कि उपर्युक्त सभी चार साक्षियों की परीक्षा सभी 140 अभियुक्तों की उपस्थिति में नहीं हुई थी क्योंकि उनमें से तीन उनके साक्ष्य अभिलिखित होने के बाद समर्पण किए थे — उन्हें पूर्वाग्रह हो सकता है। अतः 5 वें न्यायालय ने दिनांक 30 अप्रैल, 1987 के अपने आदेश द्वारा अभियोजन को उन सभी चार साक्षियों को नए सिरे से परीक्षित करने का निर्देश दिया।

उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर राज्य ने एक पुनरीक्षण आवेदन दाखिल किया जिसे उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश के साथ निपटाया:-

> "गुण-दोष में गए बिना कि आक्षेपित आदेश में नामित चार साक्षियों की पुनः परीक्षा मामले के न्यायोचित निर्णय के लिए किसी भी प्रकार से आवश्यक है अथवा नहीं, चूंकि इस न्यायालय के समक्ष अभियोजन की ओर से यह रुख अपनाया गया है कि वह विचारण में उन्हें पुनः परीक्षित करने का प्रस्ताव नहीं रखता, इसलिए इस आवेदन का निपटारा इस निर्देश के साथ करना पर्याप्त है कि यदि बचाव पक्ष उनका प्रति-परीक्षण करने के लिए आवेदन करे, तो न्यायालय उनके प्रति-परीक्षण का आदेश दे सकता है और यदि न्यायालय अनुभव करे कि मामले के न्यायोचित

निर्णय के लिए कोई आगे का साक्ष्य आवश्यक है, तो वह उन्हें न्यायालय में बुला सकता है।

5 वें अपर सत्र न्यायाधीश, मुंगेर के न्यायालय के पूर्ववर्ती प्रभारी द्वारा आक्षेपित आदेश में नामित चार साक्षियों का अभिलिखित साक्ष्य किसी भी पक्ष द्वारा देखा एवं उस पर अवलंब किया जा सकता है अथवा नहीं का प्रश्न विचारण की सुनवाई पर विचार के लिए खुला रहेगा। विद्वान सत्र न्यायाधीश अभियोजन की प्रतीक्षा किए बिना विचारण के साथ आगे बढ़ेगा कि वे मुख्य-परीक्षण के लिए उन्हें प्रस्तुत करें।"

उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्देशों के अनुसार हुए विचारण के दौरान दो अभियुक्तों की मृत्यु हो गई और इस प्रकार विचारण 138 अभियुक्तों के साथ जारी रहा। विचारण की समाप्ति पर न्यायालय ने उनमें से 78 को दोषमुक्त किया और अन्य 60 को उनके विरुद्ध लगाए गए सभी या कुछ आरोपों के संबंध में दोषसिद्ध एवं दंडित किया। पांच दोषसिद्धों को मृत्युदंड दिया गया। हमारे समक्ष तीनों अपीलार्थियों में से प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख, 148, 302/149, 436/145, 380 एवं 201/149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया और आजीवन कारावास सहित विभिन्न अवधि के कारावास के दंड दिए गए। उनकी दोषसिद्धियों एवं दंडादेशों के विरुद्ध सभी दोषसिद्धों ने पृथक-पृथक अपीलें दायर कीं और बिहार राज्य ने अपनी बारी में अन्य के दोषमुक्तिके विरुद्ध अपील दायर की। दोषसिद्धों एवं राज्य द्वारा दायर अपीलों के साथ उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 366 के अंतर्गत विचारण न्यायालय द्वारा की गई संदर्भ पर भी सुनवाई की और संदर्भ अस्वीकार करते हुए, सरकारी अपील खारिज करते हुए, एक दोषसिद्ध की अपील स्वीकार करते हुए और अन्य सभी दोषसिद्धों की अपीलें कुछ की दोषसिद्धियों एवं दंडादेशों में परिवर्तन के साथ खारिज करते हुए एक सामान्य निर्णय द्वारा सभी का निपटान किया। हमारे

समक्ष तीनों अपीलार्थियों, यथा — रणबीर यादव, सुखदेव यादव एवं पांडव यादव के संबंध में, उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अंतर्गत अपराधों को छोड़कर उनकी दोषसिद्धियों एवं दंडादेशों की पुष्टि की। वे अकेले ही विशेष अनुमति प्राप्त करके इन तीन अपीलों के माध्यम से इस न्यायालय में आए हैं।

श्री जेठमलानी, तीनों अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने पहले यह तर्क दिया कि 5 वें न्यायालय में हुआ विचारण पूर्णतः क्षेत्राधिकार-विहीन था और परिणामतः उस न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धियां एवं दंडादेश शून्य एवं अकृत थे। अपने तर्क को विस्तृत करते हुए श्री जेठमलानी ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय के पास 10 वें न्यायालय से 5 वें न्यायालय में मामले को स्थानांतरित करने की शक्ति नहीं थी और वह भी प्रशासनिक आदेश द्वारा उस अवस्था में जब, स्वीकार्यतः, विचारण पहले ही प्रारंभ हो चुका था। श्री जेठमलानी ने संहिता की धारा 194 की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया और यह तर्क दिया कि धारा का सादा पठन निर्विवाद रूप से दर्शाएगा कि किसी विशेष न्यायालय को मामला विचारण करने का निर्देश देने की उच्च न्यायालय की शक्ति का प्रयोग केवल प्रारंभिक अवस्था में ही किया जा सकता है जब विचारण अभी प्रारंभ नहीं हुआ हो और उसके बाद नहीं। उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि एकमात्र अन्य धारा जो उच्च न्यायालय को संहिता के अंतर्गत मामला स्थानांतरित करने का अधिकार देती थी, वह धारा 407 थी किंतु ऐसी शक्ति का प्रयोग न्यायिक रूप से केवल उसकी अपेक्षाओं के अनुपालन के उपरांत एवं पक्षकारों को सुनकर ही किया जा सकता था। चूंकि, स्वीकार्यतः, उच्च न्यायालय ने ऐसी न्यायिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया, स्थानांतरण का आदेश जिसके द्वारा 5 वें न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्राप्त हुआ, शून्य एवं अप्रभावी माना जाना चाहिए। उन्होंने अंत में यह तर्क दिया कि ऐसी गंभीर अवैधता एवं क्षेत्राधिकार का अभाव संहिता की धारा 465 के अंतर्गत उपचार्य नहीं था। इस तर्क के समर्थन में उन्होंने *ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक एवं अन्य,* [1988] 2 एस.सी.सी. 602 में इस न्यायालय के बहुमत निर्णय पर अवलंब किया।

श्री जेठमलानी के उपर्युक्त तर्कों पर विचार करने से पूर्व, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि पर्याप्त अवसर दिए जाने के बावजूद, उच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थानांतरण का आदेश हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया। यह कहना अनावश्यक है कि यदि वह प्रस्तुत किया गया होता तो हमें उन तथ्यों एवं परिस्थितियों का सटीक ज्ञान होता जिन्होंने उच्च न्यायालय को वह आदेश पारित करने के लिए प्रेरित किया और शक्ति के स्रोत को स्पष्ट रूप से समझ लेते। तथापि, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से जो हम पहले ही विस्तृत कर चुके हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि आदेश उच्च न्यायालय द्वारा *प्रशासनिक* क्षेत्राधिकार में पारित किया गया था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रत्येक उच्च न्यायालय को उन राज्यक्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है, समस्त न्यायालयों एवं अधिकरणों पर अधीक्षण प्राप्त है और यह सुस्थापित है कि अधीक्षण की यह शक्ति उच्च न्यायालय को प्रशासनिक आवश्यकता एवं औचित्य के लिए आदेश पारित करने का अधिकार देती है। वर्तमान मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने स्थानांतरण की शक्ति कुछ अभियुक्तों द्वारा जेल से दायर उस याचिका के संदर्भ में प्रयुक्त की जिसमें उन्होंने शिकायत की थी कि न्यायालय कक्ष में उन्हें समायोजित नहीं किया जा सका जिसके परिणामस्वरूप उनमें से कुछ को बाहर रहना पड़ा। ऐसा आगे प्रतीत होता है कि उठाई गई अन्य शिकायत यह थी कि न्यायालय इतना भीड़भाड़ वाला था कि अधिवक्ताओं के लिपिकों को भी संक्षिप्त विवरण लेकर न्यायालय कक्ष में प्रवेश नहीं करने दिया जा रहा था। ऐसी स्थिति स्पष्टतः बड़ी संख्या में व्यक्तियों के विचारण के कारण उत्पन्न हुई थी। यदि उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने मामले को 5 वें न्यायालय में स्थानांतरित करने की अपनी पूर्ण प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग किया, जिसके बारे में हम मानते हैं कि अभियुक्तों, अधिवक्ताओं एवं विचारण से संबंधित अन्य लोगों को समायोजित करने की बड़ी एवं बेहतर व्यवस्था थी, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, विशेष रूप से उन लोगों द्वारा जिनके अनुरोध पर एवं जिनके लाभ के लिए शक्ति का प्रयोग किया गया था। तथापि श्री जेठमलानी

ने तर्क दिया कि प्रशासनिक शक्ति उस अवस्था में प्रयुक्त नहीं की जा सकती जब न्यायिक शक्ति न केवल उपलब्ध एवं क्रियाशील थी बल्कि समान रूप से प्रभावी एवं कारगर भी थी। श्री जेठमलानी के अनुसार, यदि पूर्ववर्ती को सम्मिलित न किया गया तो उत्तरवर्ती निष्फल हो जाएगा।

हम श्री जेठमलानी के उपर्युक्त दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं। जब तक शक्ति का प्रयोग केवल प्रशासनिक आवश्यकता के लिए किया जा सकता है और किया जाता है बिना किसी न्यायिक कार्यवाही में पक्षकारों के अधिकारों या हितों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए, हम यह मानने का कोई कारण नहीं पाते कि प्रशासनिक शक्तियों को न्यायिक शक्तियों को स्थान देना होगा केवल इसलिए कि किसी दी गई परिस्थिति में वे सह-अस्तित्व में हैं। इसके विपरीत, वर्तमान मामला यह दर्शाता है कि प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग किस प्रकार अधिक समीचीन, प्रभावी एवं कारगर था। यदि उच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 407 को लागू करते हुए अपनी न्यायिक स्थानांतरण शक्ति का प्रयोग करने का आशय रखा होता तो इसके लिए उसकी सभी प्रक्रियागत औपचारिकताओं के अनुपालन की आवश्यकता होती, इसके अलावा पक्षकारों को उचित सुनवाई के पर्याप्त अवसर प्रदान करने पड़ते जिसके परिणामस्वरूप न केवल विचारण में विलंब होता बल्कि कुछ अभियुक्तों की और अधिक निरुद्धता भी होती, यह स्पष्ट है। अतः, न्यायिक शक्तियों के स्थान पर अपनी अधीक्षण शक्ति का प्रयोग करके, उच्च न्यायालय ने न केवल अभियुक्तों एवं विचारण से संबंधित अन्य लोगों की शिकायतों का निवारण किया बल्कि इसे अत्यंत शीघ्रता से किया।

अब *ए.आर. अंतुले* के मामले (उपरोक्त) पर आते हैं, हम पाते हैं कि बहुमत निर्णय में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत, जिनकी ओर श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया, का यहां किसी प्रकार से प्रयोग नहीं है। वहां यह प्रश्न उठा था कि क्या (i) उच्च न्यायालय आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (संक्षेप में '1952 अधिनियम') के अनुसार उसके

अंतर्गत गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता था जो विशेष न्यायालय नहीं था, और (ii) सर्वोच्च न्यायालय के उस पूर्व आदेश की जिसने विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित किया था, वैधता एवं औचित्य। दोनों प्रश्नों का नकारात्मक उत्तर देते हुए विद्वान न्यायाधीशों ने, बहुमत का मत व्यक्त करते हुए, अभिमत व्यक्त किया कि (i) 1952 अधिनियम की धारा 7(i) ने एक शर्त सृजित की जो 1952 अधिनियम की धारा 6(i) के अंतर्गत अपराधों के विचारण के लिए *अनिवार्य शर्त* थी। शर्त यह थी कि *दंड प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य विधि में निहित किसी बात के बावजूद* उक्त अपराध *केवल विशेष न्यायाधीशों* द्वारा ही विचारणीय होगा। स्पष्ट शब्दों द्वारा इसलिए यह संहिता में निहित मामलों को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने का अधिकार, जो विशेष न्यायालय नहीं था, ले गया और यह संहिता की धारा 406 एवं 407 में निहित किसी बात के बावजूद था; और (ii) उच्च न्यायालय में मामले को स्थानांतरित करने वाला सर्वोच्च न्यायालय का पूर्व आदेश विधि, यथा — 1952 अधिनियम की धारा 7(i) द्वारा प्राधिकृत नहीं था और सर्वोच्च न्यायालय, अपने निर्देश द्वारा, बम्बई उच्च न्यायालय को 1952 अधिनियम की योजना के अंतर्गत ऐसा क्षेत्राधिकार नहीं प्रदान कर सकता था जो उसके पास नहीं था। चूंकि वर्तमान मामले में 5 वां न्यायालय संहिता के अंतर्गत सत्र विचारण संचालित करने के लिए सक्षम था, उस न्यायालय को क्षेत्राधिकार प्रदान करने वाला स्थानांतरण का आदेश एवं उसके बाद हुआ विचारण विधि में दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

चूंकि हमने पाया है कि स्थानांतरण का आदेश उच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत उपलब्ध अपनी प्रशासनिक शक्तियों के प्रयोग में किया गया था, श्री जेठमलानी द्वारा संहिता की धारा 194 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने की उच्च न्यायालय की क्षमता से संबंधित उठाए गए प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक नहीं है। परिणामतः, हमें *केहर सिंह बनाम राज्य,* [1988] 3 एस.सी.सी. 609 में न्यायालय द्वारा दी

गई संहिता की धारा 194 की व्याख्या, जिसकी ओर श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया, में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त विवेचना के लिए हम श्री जेठमलानी के प्रथम तर्क में कोई गुण-दोष नहीं पाते।

श्री जेठमलानी ने आगे यह तर्क दिया कि इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि 5 वें न्यायालय ने दिनांक 16 अप्रैल, 1986 के अपने आदेश द्वारा बाद में समर्पण के उपरांत विचारण पर रखे गए उन तीन सहित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध नए सिरे से आरोप विरचित करने का निर्णय किया और उसके अनुसरण में आरोप विरचित किए और विचारण के साथ आगे बढ़ा, 10 वें न्यायालय द्वारा संचालित पूर्ववर्ती विचारण समाप्त हो गया माना जाना चाहिए, और इसका अनिवार्य अर्थ था कि चार साक्षियों, यथा — महेंद्र सिंह, नागेंद्र सिंह, सुखदेव सिंह एवं रामचंद्र सिंह जो उसमें परीक्षित हुए थे, के साक्ष्य पर आक्षेपित दोषसिद्धि एवं दंडादेश के आदेश को अभिलिखित करने के लिए 5 वें न्यायालय द्वारा अवलंब नहीं किया जा सकता था। श्री जेठमलानी के अनुसार, विधि का सामान्य सिद्धांत यह है कि कोई न्यायाधीश या दंडाधिकारी किसी मामले का निर्णय केवल उसके द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर ही कर सकता है और इस लाभकारी सिद्धांत से प्रस्थान केवल उन मामलों में अनुज्ञेय है जहां वह अपने पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित या अंशतः अपने पूर्ववर्ती द्वारा एवं अंशतः उसके द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर कार्य करने के लिए संहिता की धारा 326 को लागू करने का निर्णय करता है। श्री जेठमलानी ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में जैसा कि विचारण न्यायालय ने नए सिरे से विचारण करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया, पूर्ववर्ती विचारण में अभिलिखित किसी भी साक्ष्य का संदर्भ एवं उस पर अवलंब स्पष्टतः अवैध एवं अक्षम था। इस तर्क के समर्थन में श्री जेठमलानी ने *पयारे लाल बनाम पंजाब राज्य*, [1962] 3 एस.सी.आर. 328 में इस न्यायालय के निर्णय पर अवलंब किया। इस बिंदु पर श्री जेठमलानी ने अंत में यह तर्क दिया कि एक बार जब विचारण न्यायालय ने नया विचारण करने के लिए अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग कर लिया, तो उसमें उच्च

न्यायालय का हस्तक्षेप न केवल संहिता की धारा 397(2) के निषेध के दृष्टिगत अनुज्ञेय नहीं था बल्कि गुण-दोष के आधार पर भी असंधार्य था।

श्री जेठमलानी के उपर्युक्त तर्कों की सराहना करने के लिए, संहिता की धारा 326 के पीछे विधायी इतिहास का पहले संदर्भ लेना अनिवार्य होगा। 1898 की संहिता में तत्संगत धारा 350 थी और, जहां तक हमारे प्रयोजनों के लिए सारवान है, निम्नानुसार पढ़ी जाती थी:

> (1) "जब भी कोई दंडाधिकारी, किसी जांच या विचारण में समस्त या कोई भाग साक्ष्य सुनने और अभिलिखित करने के उपरांत, *उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद कर दे,* और उसका *उत्तराधिकारी अन्य दंडाधिकारी* हो जो ऐसा क्षेत्राधिकार रखता हो और उसका प्रयोग करता हो, उत्तराधिकारी दंडाधिकारी अपने पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर, या अंशतः अपने पूर्ववर्ती द्वारा एवं अंशतः अपने द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर कार्य कर सकता है, या वह *साक्षियों को पुनः बुला सकता है और जांच या विचारण पुनः प्रारंभ कर सकता है।*
>
> परंतु निम्नलिखित प्रावधान होंगे:-
>
> (क) किसी भी विचारण में जब दूसरा दंडाधिकारी अपनी कार्यवाही प्रारंभ करे तो अभियुक्त मांग कर सकता है कि साक्षी या उनमें से किसी को पुनः बुलाया एवं पुनः सुना जाए:
>
> (ख) उच्च न्यायालय या, दंड जिला दंडाधिकारी के अधीनस्थ दंडाधिकारियों द्वारा विचारित मामलों में, जिला दंडाधिकारी, चाहे कोई अपील हो या न हो, उस दंडाधिकारी के समक्ष पूर्णतः अभिलिखित साक्ष्य पर पारित दोषसिद्धि को, जिसके समक्ष दोषसिद्धि हुई, अपास्त कर सकता है, यदि ऐसा न्यायालय या जिला

> दंडाधिकारी यह राय रखता हो कि अभियुक्त को इससे सारवान रूप से पूर्वाग्रह हुआ है, और नई जांच या विचारण का आदेश दे सकता है।"

(बल दिया गया)

उपरोक्त उद्धृत उप-धारा (1) में "उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद कर दे" शब्दों की व्याख्या करने में कुछ उच्च न्यायालयों ने माना कि धारा 350 का आशय ऐसे मामले के लिए उपबंध करना था जहां किसी विशेष पद के एक अवलंबी के समक्ष जांच या विचारण प्रारंभ हुआ हो और वह अधिकारी उस पद पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद कर दे और उसका उत्तराधिकारी अन्य अधिकारी हो, जबकि कुछ अन्य उच्च न्यायालयों ने माना कि यह किसी विशेष पद को नहीं बल्कि जांच या विचारण को संदर्भित करता है। इसी प्रकार "अन्य दंडाधिकारी द्वारा उत्तराधिकारी होने" शब्दों की कुछ उच्च न्यायालयों द्वारा यह अर्थान्वयन किया गया कि प्रथम दंडाधिकारी ने अपना पद छोड़ दिया था किंतु अन्य उच्च न्यायालयों ने माना कि "उत्तराधिकारी" शब्द का संकीर्ण अर्थ में अर्थान्वयन नहीं होना चाहिए। यद्यपि, हमारे विचार में, "उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद कर दे" के उपरांत "उसमें" शब्द "किसी जांच या विचारण में" पूर्ववर्ती शब्दों के संदर्भ में इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह जांच या विचारण को संदर्भित करता है, तथापि विधायिका ने अधिनियम XVIII/1923 की धारा 4 द्वारा धारा 350(1) में निम्नलिखित उप-धारा जोड़ना आवश्यक समझा, किसी भी विवाद की संभावना से परे मामले को रखने के लिए।

> "(3) जब कोई मामला इस संहिता के उपबंधों के अंतर्गत एक दंडाधिकारी से दूसरे दंडाधिकारी को स्थानांतरित किया जाता है, तो पूर्व को उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद करने वाला एवं उप-धारा (1) के अर्थ में उत्तराधिकारी द्वारा उत्तराधिकारी होने वाला माना जाएगा।"

1898 की संहिता की धारा 350 में अगला विधायी परिवर्तन अधिनियम 26/1955 द्वारा लाया गया। उससे, धारा की उप-धारा (1) में "या वह साक्षियों को पुनः बुला सकता है और जांच या विचारण पुनः प्रारंभ कर सकता है" शब्दों के स्थान पर एवं परंतुक के स्थान पर निम्नलिखित परंतुक प्रतिस्थापित किया गया:

> "परंतु यदि उत्तराधिकारी दंडाधिकारी यह राय रखता है कि न्याय के हित में उन साक्षियों में से किसी की आगे परीक्षा आवश्यक है जिनका साक्ष्य पहले से अभिलिखित किया जा चुका है, तो वह ऐसे साक्षियों को पुनः बुला सकता है और ऐसी आगे परीक्षा, प्रति-परीक्षण एवं पुनः परीक्षण, यदि कोई हो, जो वह अनुमति दे, के उपरांत साक्षी को उन्मोचित किया जाएगा।"

जब 1898 की संहिता निरस्त करके संहिता द्वारा प्रतिस्थापित की गई तो धारा 350 को बिना किसी पाठ्य परिवर्तन के धारा 326 के रूप में पुनर्संख्यांकित किया गया। तथापि, बाद में दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1978 द्वारा धारा को दंडाधिकारी के साथ-साथ न्यायाधीश को भी उसके अंतर्गत प्रयोज्य शक्ति एवं विवेकाधिकार प्रदान करने के लिए संशोधित किया गया। उपरोक्त विस्तृत संशोधनों के साथ धारा 326 प्रश्नगत विचारण के समय निम्नानुसार पढ़ी जाती थी, और अभी भी इसी प्रकार पढ़ी जाती है:

> "(1) जब भी कोई न्यायाधीश या दंडाधिकारी किसी जांच या विचारण में समस्त या कोई भाग साक्ष्य सुनने और अभिलिखित करने के उपरांत उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद कर दे और उसका उत्तराधिकारी अन्य न्यायाधीश या दंडाधिकारी हो जो ऐसा क्षेत्राधिकार रखता हो और उसका प्रयोग करता हो, उत्तराधिकारी न्यायाधीश या दंडाधिकारी अपने पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर, या अंशतः अपने पूर्ववर्ती द्वारा एवं अंशतः अपने द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर कार्य कर सकता है;

परंतु यदि उत्तराधिकारी न्यायाधीश या दंडाधिकारी यह राय रखता है कि *न्याय के हित में उन साक्षियों में से किसी की आगे परीक्षा आवश्यक है जिनका साक्ष्य पहले से अभिलिखित किया जा चुका है, तो वह ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुला सकता है, और ऐसी आगे परीक्षा, प्रति-परीक्षण एवं पुनः परीक्षण, यदि कोई हो, जो वह अनुमति दे, के उपरांत साक्षी को उन्मोचित किया जाएगा।*

(2) जब कोई मामला इस संहिता के उपबंधों के अंतर्गत एक न्यायाधीश से दूसरे न्यायाधीश को या एक दंडाधिकारी से दूसरे दंडाधिकारी को स्थानांतरित किया जाता है, तो पूर्व को उसमें क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना बंद करने वाला एवं उप-धारा (1) के अर्थ में उत्तराधिकारी द्वारा उत्तराधिकारी होने वाला माना जाएगा।

(3) XXX XXXX XXXX"

(बल दिया गया)

धारा 350 की उप-धारा (1) का तुलनात्मक पठन, जैसा वह 1955 में उसके संशोधन से पूर्व था और जैसा वह तब से उसके क्रमांक में परिवर्तन एवं "न्यायाधीश" शब्द के समावेश के साथ है, से हम पाते हैं कि न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को अपने पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर या अंशतः अपने पूर्ववर्ती द्वारा एवं अंशतः अपने द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर कार्य करने के लिए पहले दिया गया विवेकाधिकार अभी भी बना हुआ है। किंतु जहां तक दूसरे विकल्प का संबंध है, जबकि पहले वह *साक्षियों को पुनः बुला सकता था और जांच या विचारण पुनः प्रारंभ कर सकता था* — जिसका अनिवार्य अर्थ था नया विचारण — अब वह केवल ऐसे *साक्षी को, जिसकी पहले परीक्षा हो चुकी हो, आगे परीक्षण के लिए ही पुनः बुला सकता है* और ऐसी आगे परीक्षा, प्रति-परीक्षण एवं पुनः परीक्षण, यदि कोई हो, के उपरांत उसे उन्मोचित करता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि अब दंडाधिकारी या न्यायाधीश अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग केवल पहले से परीक्षित साक्षी की आगे

परीक्षा के लिए ही कर सकता है न कि नए विचारण के लिए साक्षियों की नई परीक्षा के लिए। स्पष्टतः, दंडाधिकारी एवं न्यायाधीश के पद में अनिवार्य बार-बार होने वाले परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए एवं शीघ्र विचारण प्रदान करने के लिए विधायिका ने 1955 के संशोधन अधिनियम के स्पष्ट शब्दों द्वारा अभियुक्त के नए सिरे से विचारण का दावा करने के सुस्थापित अधिकार को एवं न्यायालय का ऐसा निर्देश देने के अधिकार को ले लिया है। उस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर हमारा यह मत है कि *पयारे लाल* का मामला (उपरोक्त) जो तब निर्णीत हुआ था जब धारा 350 अपने 1955 के संशोधन के बिना क्षेत्र में प्रचालित थी, यहां कोई प्रासंगिकता नहीं रखता। उस मामले में, पयारे लाल एवं अन्य पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) के अंतर्गत अपराधों के लिए अभियोजन किया गया था। 1952 अधिनियम जिसने ऐसे अपराधों के विचारण की प्रक्रिया निर्धारित की थी, उसके अंतर्गत नियुक्त विशेष न्यायाधीश द्वारा एवं 1952 अधिनियम की धारा 8 में उल्लिखित 1898 की संहिता के कतिपय उपबंधों के अनुसार विचारण किए जाने की अपेक्षा करता था। विशेष न्यायाधीश ने तदनुसार साक्ष्य सुना किंतु निर्णय देने से पूर्व उसका स्थानांतरण हो गया और उसका उत्तराधिकारी अन्य विशेष न्यायाधीश हुआ। उत्तराधिकारी ने साक्षियों को वापस नहीं बुलाया और साक्ष्य पुनः नहीं सुना बल्कि किसी भी पक्ष की आपत्ति के बिना उस अवस्था से विचारण के साथ आगे बढ़ा जहां उसके पूर्ववर्ती ने छोड़ा था। विचारण अंततः दोषसिद्धि में परिणत हुआ और अपील में पंजाब उच्च न्यायालय ने माना कि 1952 अधिनियम की धारा 8(1) के दृष्टिगत विशेष न्यायाधीश के समक्ष विचारण पर 1898 की संहिता की धारा 350 लागू होती थी और इसलिए उत्तराधिकारी विशेष न्यायाधीश अपने पूर्ववर्ती द्वारा अभिलिखित साक्ष्य पर आगे बढ़ने का अधिकारी था। पंजाब उच्च न्यायालय के उपर्युक्त निष्कर्ष को अपास्त करते हुए इस न्यायालय ने माना कि 1952 अधिनियम का आशय यह नहीं था कि 1898 की संहिता की धारा 350 विशेष न्यायाधीश के लिए वारंट मामलों के विचारण के लिए निर्धारित प्रक्रिया के नियम के रूप में उपलब्ध होगी क्योंकि विशेष न्यायाधीश अधिनियम के

प्रयोजन के लिए दंडाधिकारी नहीं था और न ही अधिनियम की अपेक्षा थी कि उसे ऐसा माना जाए। इस न्यायालय ने आगे माना कि उत्तराधिकारी विशेष न्यायाधीश के पास, इसलिए, मामले के विचारण को उस अवस्था से आगे बढ़ाने का विधि के अंतर्गत कोई अधिकार नहीं था जहां उसके पूर्ववर्ती ने उसे छोड़ा था और यह कि अपीलार्थियों की दोषसिद्धि समर्थित नहीं की जा सकती थी क्योंकि उसने (उत्तराधिकारी विशेष न्यायाधीश ने) स्वयं साक्ष्य नहीं सुना था। उसका अनिवार्य अर्थ था, इस न्यायालय के अनुसार, कि उत्तराधिकारी विशेष न्यायाधीश के समक्ष कार्यवाही स्पष्ट रूप से अक्षम थी। वहां उत्तरदाता-राज्य के इस तर्क को नकारते हुए कि दोष मात्र एक अनियमितता थी और दोषसिद्धि को, यदि साक्ष्य पर संधार्य हो, तो 1898 की संहिता की धारा 537 (जो संहिता की धारा 465 से संगत है) के अंतर्गत बरकरार रखा जा सकता था, इस न्यायालय ने *पुलुकुरी कोटय्या बनाम किंग एम्परर*, ए.आई.आर. (1947) पी.सी. 67 में प्रिवी काउंसिल की निम्नलिखित टिप्पणियों पर अवलंब करते हुए माना:

> "जब किसी विधि द्वारा निर्धारित तरीके से भिन्न तरीके में विचारण आयोजित किया जाता है (जैसा एन.ए. सुप्रमनिया अय्यर के मामले में, 1991 एल.आर. 28 आई.ए. 257), विचारण दोषपूर्ण है, और किसी अनियमितता को उपचारित करने का प्रश्न नहीं उठता; किंतु यदि विचारण मूलतः विधि द्वारा निर्धारित तरीके में आयोजित किया जाता है, किंतु ऐसे आयोजन के दौरान कोई अनियमितता होती है, तो अनियमितता धारा 537 के अंतर्गत उपचारित की जा सकती है, और कोई कम नहीं क्योंकि अनियमितता में, जैसा कि लगभग हमेशा होगा, संहिता के बहुत व्यापक उपबंधों में से एक या अधिक का उल्लंघन शामिल है।"

कि मामला प्रिवी काउंसिल द्वारा उल्लिखित प्रथम श्रेणी के अंतर्गत आता है, जो क्षमता के अभाव का मामला है न कि अनियमितता का। उपर्युक्त निष्कर्षों के साथ न्यायालय ने नए विचारण के लिए मामला वापस भेजा।

अब वर्तमान मामले की ओर आते हैं, हम 5 वें न्यायालय द्वारा दिनांक 16 अप्रैल, 1986 को पारित आदेश से पाते हैं कि 5 वें न्यायालय द्वारा नए सिरे से आरोप विरचित करने और अभियोजन को उसकी ओर से परीक्षित किए जाने वाले साक्षियों की सूची प्रस्तुत करने का निर्देश देने के लिए जो प्राथमिक कारण महत्वपूर्ण थे, वे यह थे कि आरोप विरचित होने के उपरांत तीन अभियुक्तों ने समर्पण किया था और अभियोजन के चार साक्षियों की मुख्य-परीक्षण हो चुकी थी और उनमें से तीन को प्रति-परीक्षण के उपरांत उन्मोचित किया जा चुका था तथा अभियुक्त व्यक्तियों के बचाव में पूर्वाग्रह हुआ था क्योंकि विचारण के प्रथम दिन उनकी ओर से उनके अपनी पसंद के अधिवक्ता के स्थान पर बचाव पैनल का एक अधिवक्ता उपस्थित हुआ था। अतः वर्तमान अपीलार्थियों एवं उनके साथ विचारण किए जा रहे अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध 5 वें न्यायालय द्वारा नए सिरे से आरोप विरचित करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं हुआ और न हो सकता था; और वास्तव में, जैसा पहले नोट किया जा चुका है, केवल अतिरिक्त आरोप उनके विरुद्ध विरचित किए गए। अतः 5 वें न्यायालय के नए सिरे से आरोप विरचन के संबंध में दिए गए निर्देश को उन तीन के संदर्भ में पढ़ा एवं अर्थान्वित किया जाना चाहिए जो बाद में समर्पण किए थे।

जहां तक उन तीन अभियुक्तों का संबंध है, स्वीकार्यतः वे 10 वें न्यायालय में विचारण प्रारंभ होने के समय उपस्थित नहीं थे और इसलिए 5 वां न्यायालय न केवल उनके विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए विधिक रूप से बाध्य था, बल्कि पहले से परीक्षित चार साक्षियों के साक्ष्य को नए सिरे से अभिलिखित करने के लिए भी, यदि अभियोजन उसे उनके विरुद्ध उपयोग करना चाहता था, क्योंकि संहिता की धारा 299 एवं अन्य धाराओं में उपबंधित असाधारण मामलों को छोड़कर, संहिता की धारा 273 के दृष्टिगत सभी साक्ष्य अभियुक्त की उपस्थिति में, अथवा जब व्यक्तिगत उपस्थिति माफ कर दी जाए, उसके अधिवक्ता की उपस्थिति में लिए जाने चाहिए। अतः वे तीन अभियुक्त उनके विरुद्ध उन चार साक्षियों के साक्ष्य की स्वीकृति एवं उस पर अवलंब को वैधानिक रूप से एवं सफलतापूर्वक चुनौती दे

सकते थे। तथापि, हमारे समक्ष तीनों अपीलार्थियों को ऐसी कोई भी समान शिकायत उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती क्योंकि उन साक्षियों की परीक्षा उनकी उपस्थिति में की गई थी और उनके अपनी पसंद के अधिवक्ताओं द्वारा कई दिनों तक विस्तृत रूप से प्रति-परीक्षण किया गया था। तब पुनः, जैसा पहले नोट किया जा चुका है, उनके एवं अन्य के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 364/149 एवं 201/149 के अंतर्गत अतिरिक्त आरोप विरचित होने के उपरांत अभियोजन ने एक प्रार्थना प्रस्तुत की कि वे उन चार साक्षियों को, जो पहले पूर्व न्यायालय में परीक्षित हो चुके थे, आगे प्रति-परीक्षण के लिए प्रस्तुत करने को तैयार हैं किंतु तब अपीलार्थियों ने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया और उनकी नई परीक्षण पर जोर दिया जिसे विचारण न्यायालय ने स्वीकार कर लिया किंतु, जैसा पहले नोट किया जा चुका है, उच्च न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया। यद्यपि हम श्री जेठमलानी के इस तर्क को स्वीकार करें कि 5 वें न्यायालय का अभियोजन साक्षियों की नई परीक्षण का निर्देश देने वाला आदेश एक अंतरवर्ती आदेश था और इसलिए उच्च न्यायालय संहिता की धारा 397(2) के निषेध के दृष्टिगत अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उसे अपास्त नहीं कर सकता था और हमें इस संबंध में उच्च न्यायालय के आदेश की कोई संज्ञान नहीं लेनी चाहिए, तो इसका केवल यह अर्थ होगा कि अभियोजन द्वारा पहले परीक्षित चार साक्षियों की नई परीक्षण नहीं की गई। तब भी, जहां तक तीनों अपीलार्थियों का संबंध है जिनसे केवल हम इस अपील में संबंधित हैं। इससे स्थिति नहीं बदलती क्योंकि — पुनरावृत्ति के जोखिम पर हम पुनः कहते हैं — उनकी परीक्षण अपीलार्थियों की उपस्थिति में की गई थी और उनका विस्तृत एवं संपूर्ण प्रति-परीक्षण किया गया था और इसलिए उन्हें कोई पूर्वाग्रह हुआ नहीं कहा जा सकता।

मामले को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। संहिता की धारा 216 न्यायालय को निर्णय पारित होने से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप को परिवर्तित करने या जोड़ने का अधिकार देती है और उपबंध करती है कि ऐसे परिवर्तन या जोड़ के उपरांत

न्यायालय को उसकी उप-धारा (2) के अनुसार अभियुक्त को उसे पढ़कर सुनाना एवं समझाना अपेक्षित है। आगे उप-धारा (3) के अंतर्गत यह निर्धारित है कि यदि न्यायालय की राय में आरोप में परिवर्तन या जोड़ से उसके बचाव में अभियुक्त को या मामले के संचालन में अभियोजक को पूर्वाग्रह होने की संभावना नहीं है तो न्यायालय अपने विवेकाधिकार में परिवर्तित या जोड़े गए आरोप के साथ तत्काल विचारण के साथ आगे बढ़ सकता है। उप-धारा (4) उपबंध करती है कि यदि परिवर्तन या जोड़ ऐसा है कि तत्काल विचारण के साथ आगे बढ़ने से अभियुक्त या अभियोजक को पूर्वाग्रह होने की संभावना है तो न्यायालय या तो नए विचारण का निर्देश दे सकता है या विचारण को इतनी अवधि के लिए स्थगित कर सकता है जितना आवश्यक हो। संहिता की धारा 217 उपबंध करती है कि जब भी न्यायालय द्वारा विचारण प्रारंभ होने के उपरांत आरोप परिवर्तित या जोड़ा जाता है तो अभियोजक एवं अभियुक्त को ऐसे परिवर्तन या जोड़ के संदर्भ में किसी ऐसे साक्षी को, जिसकी पहले परीक्षा हो चुकी हो, वापस बुलाने या बुलाने एवं परीक्षित करने की अनुमति दी जाएगी जब तक कि न्यायालय लिखित में अभिलिखित कारणों से यह न समझे कि ऐसे साक्षी को वापस बुलाने या पुनः परीक्षित करने की इच्छा केवल उत्पीड़न या विलंब के प्रयोजनों के लिए अथवा न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के लिए थी। इसके अलावा, यह अभियोजक एवं अभियुक्त को किसी अन्य साक्षी को बुलाने की अनुमति देता है जिसे न्यायालय सारवान समझे। उपरोक्त दोनों धाराओं के संयुक्त पठन से, इसलिए, यह स्पष्ट है कि आरोप के परिवर्तन या जोड़ने के उपरांत अभियोजन एवं अभियुक्त के हित की रक्षा उन्हें पहले से परीक्षित साक्षी की आगे परीक्षा या प्रति-परीक्षा करने की अनुमति देकर, यथास्थिति, और उन्हें अन्य साक्षियों को बुलाने का अवसर प्रदान करके की जानी चाहिए। यह निःसंदेह सत्य है कि न्यायालय को किसी आरोप के जोड़ने या परिवर्तन के उपरांत नए विचारण का निर्देश देने का विवेकाधिकार दिया गया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि आरोप में प्रत्येक ऐसे जोड़ या परिवर्तन से, जो अभियुक्त को पढ़कर सुनाया एवं समझाया गया हो, यह अनिवार्य निष्कर्ष निकले कि

न्यायालय ने उनके लिए नए विचारण का निर्देश दिया था। इसलिए यह अनुसरित होता है कि जब तक न्यायालय कोई विशिष्ट आदेश पारित न करे और नए विचारण का निर्देश न दे, यह नहीं माना जा सकता कि नया विचारण प्रारंभ हो गया है केवल इसलिए कि अभियुक्त को पढ़कर सुनाए एवं समझाए गए आरोप में परिवर्तन या जोड़ किया गया है। वास्तव में दिनांक 30 अप्रैल, 1987 का आदेश दर्शाता है कि अभियोजन को 4 साक्षियों को नए सिरे से परीक्षित करने का निर्देश देते हुए 5 वें न्यायालय ने मामले को आगे के विचारण के लिए स्थगित किया और नए विचारण का निर्देश नहीं दिया। इसके अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा दिया गया ऐसा कोई भी निर्देश अभियुक्त या अभियोजन के प्रति पूर्वाग्रह की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, जैसा पहले नोट किया जा चुका है, आरोपों के जोड़ने के उपरांत अभियोजन ने स्पष्ट रूप से कहा कि वे पहले से परीक्षित चार साक्षियों को आगे परीक्षित नहीं करना चाहते किंतु वे उन्हें प्रस्तुत करने को तैयार हैं यदि अभियुक्त चाहें। तथापि, अभियुक्तों ने संहिता की धारा 217 के अनुसार इस अवसर का लाभ नहीं उठाया और इसलिए उनके लिए उस आधार पर शिकायत उठाने में बहुत विलंब हो गया है। हम यह जोड़ने में जल्दी करते हैं कि यद्यपि हमने पाया होता कि अतिरिक्त आरोप विरचित होने के उपरांत अपीलार्थियों के विरुद्ध विचारण की निरंतरता में कोई अनियमितता थी, तो हम केवल उस आधार पर आक्षेपित निर्णय को अपास्त करने में न्यायोचित नहीं होते क्योंकि अभिलेख पर एक कण भर भी सामग्री नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि इससे न्याय की विफलता हुई है। इसे अलग तरीके से कहें तो, हमारे विचार में ऐसे मामले में संहिता की धारा 465 सीधे लागू होती।

मामले को किसी भी दृष्टिकोण से, इसलिए, हम श्री जेठमलानी के इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि अधीनस्थ विद्वान न्यायालय, क्रमशः पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1, 2, 3 एवं 4 के रूप में वर्णित महेंद्र सिंह, सुखदेव सिंह, नागेश्वर सिंह एवं रामचंद्र सिंह के साक्ष्य पर अपीलार्थी के विरुद्ध अवलंब करने में न्यायोचित नहीं थे। इस

पहलू पर अपनी विवेचना समाप्त करने से पूर्व यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि विचारण न्यायालय ने बाद में समर्पण करने वाले तीन अभियुक्तों के विरुद्ध उपर्युक्त चार साक्षियों के साक्ष्य को नहीं माना था और तब पुनः उन तीन में से दो को दोषमुक्त किया गया था जबकि तीसरे ने इस न्यायालय में कोई विशेष अनुमति याचिका दायर नहीं की।

अब जब हमने श्री जेठमलानी द्वारा उठाए गए दो प्रारंभिक प्रश्नों का उत्तर दे दिया है, तो हम विचारण के दौरान अभियोजन द्वारा वर्णित उनकी पृष्ठभूमि सहित दो घटनाओं का विवरण देने की ओर आगे बढ़ सकते हैं।

लक्ष्मीपुर तौफीर दियारा में उत्तर लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली एवं दक्षिण लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली के नाम से दो बिंद टोलियां हैं और दोनों मुख्यतः बिंद समुदाय के लोगों द्वारा बसाई हुई हैं। दियारा में अन्य पड़ोसी गांव हैं, जो तौफीर, तौफीर करई टोला, तौफीर काजो मंटो टोला, तौफीर इंदर महतो टोला, तौफीर इंदर मारार टोला एवं तिकारामपुर के नाम से जाने जाते हैं और इन गांवों के निवासी अधिकांशतः यादव समुदाय के हैं। ये सभी गांव मुंगेर मुफस्सिल थाने के अंतर्गत स्थित हैं। कुछ वर्ष पूर्व पुराने मुंगेर जिले से खगड़िया नामक एक नया जिला गठित किया गया था और विभाजन के उपरांत गांव माथुर एवं गांव चुकटी नव-गठित खगड़िया जिले में आ गए और उक्त गांवों में अधिकांशतः यादव समुदाय के लोग निवास करते हैं। मौजा बिंद दियारा हरिन मार, मुंगेर मुफस्सिल थाने के अंतर्गत जमालपुर अंचल में स्थित है। उक्त गांव के भूखंड सं. 297, 3/373, 473, 559, 474, 615, 618, 2/618, 2/619, 620, 622, 623, 624, 625, 626, 521, 2312, 2/618 एवं 619 की भूमि खगड़िया जिले में गोगरी थाने के अंतर्गत गांव राजधन के रत्नेश्वर सिंह एवं अन्य की है। उपर्युक्त भूखंडों की भूमि, कभी-कभी, गंगा नदी (संक्षेप में 'नदी') के तल में वर्षों तक पानी में डूबी रहती है। जब भूमि पानी से निकल आती है और कृषि योग्य हो जाती है, तो लोग उस पर फसल उगाते हैं।

अभियोजन मामले के अनुसार, उक्त भूखंडों की भूमि वर्ष 1984 में पानी से बाहर आई और भूमि मालिकों की इच्छा के विरुद्ध एवं उन्हें नकद या वस्तु के रूप में कुछ भी दिए बिना, अभियुक्त धरनीधर यादव, सकलदेव यादव, राजेंद्र यादव, अशोक यादव एवं गांव तौफीर करई टोला के अन्य निवासियों द्वारा खेती की जाने लगी। ग्राम लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली के निवासी तिलकधारी सिंह के पुत्र चंद्रदेव सिंह (अभियोजन साक्षी-5) ने स्थानीय रूप से 'मनहुंडा' के नाम से जाने जाने वाले एक करार के आधार पर भूमि मालिकों से उक्त भूखंडों में से कुछ का बंदोबस्त लेने का निर्णय किया। पक्षकारों ने भूमि की उपज बांटने पर सहमति व्यक्त की और करार की एक शर्त यह थी कि बंदोबस्तकर्ता 4 मन प्रति बीघा की दर से जमींदार को गेहूं देगा। तदनुसार एक करार (प्रदर्श-1) राधाकांत सिंह एवं अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा दिनांक 6 नवंबर, 1985 को 14 बीघा, 11 कट्ठा एवं 12 धुर भूमि के संबंध में चंद्रदेव सिंह के पक्ष में निष्पादित किया गया जबकि दूसरा करार (प्रदर्श-1/1) उसी दिन रत्नेश्वर सिंह एवं अन्य द्वारा 11 बीघा, 6 कट्ठा एवं 7 धुर के लिए निष्पादित किया गया। अपने-अपने मालिकों से बंदोबस्त प्राप्त करके चंद्रदेव सिंह ने तौफीर करई टोला के यादवों को सूचित किया कि वे उक्त भूखंडों पर फसल उगाएंगे। तब भी तौफीर करई टोला के यादवों ने दिनांक 9 नवंबर, 1985 को जबरन भूखंड जोत दिए और राई (एक प्रकार का तिलहन) बो दिया। अगले दिन जब चंद्रदेव सिंह अपने भाई महेंद्र सिंह (पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1) एवं अन्य के साथ उन भूखंडों को जोतने गया तो अभियुक्त धरनीधर यादव, अशोक यादव, प्रमोद यादव, सकलदेव यादव एवं वकील यादव वहां आए और चंद्रदेव सिंह एवं उसके साथियों का पीछा किया जो अपनी जान बचाकर भाग गए। उस समय यादवों ने यह खुली धमकी दी कि यदि भूमि जोतने का प्रयास और किया गया तो पूरे बिंद समुदाय को समाप्त कर दिया जाएगा। चंद्रदेव सिंह का मुंगेर मुफस्सिल थाने में इस घटना की जानकारी देने का आशय था किंतु नहीं दे सका क्योंकि उन यादवों एवं उनके हस्तकों ने *भेलवा बारधे घाट* के साथ-साथ अन्य घाट भी बंद कर दिए थे जिनसे नदी पार करके थाने जाया जा सकता था।

अभियोजन मामला आगे यह है कि अगले प्रातः अर्थात 11 नवंबर, 1985 को यादव समुदाय के लगभग 30/40 सदस्य, जो सभी करई टोला गांव के निवासी थे, प्रमोद यादव, सकलदेव यादव, वकील यादव, धरनीधर यादव एवं सुबोध यादव के नेतृत्व में ग्राम लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली में आए और बिंदों को गाली देने लगे। भीड़ को देखकर चंद्रदेव सिंह, बिजय सिंह, साधु सिंह एवं राजे साव ने उनका सामना किया और हिंसा न करने का अनुरोध किया। तथापि, यादवों ने उनके अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया और उनमें से कुछ ने बंदूकों से गोली चलाने लगे। अभियुक्त धरनीधर यादव द्वारा चलाई गई गोलियां बिजय सिंह एवं राजे साव को लगीं, जो दोनों वहीं गिर पड़े। तत्पश्चात दुर्जन यह धमकी देकर चले गए कि दियारा में निवास करने वाले बिंद समुदाय के सभी सदस्यों को मार दिया जाएगा। इस घटना पर पुलिस के पास दो रिपोर्टें दर्ज कराई गईं, एक बिष्णुदेव साव द्वारा और दूसरी घायल बिजय सिंह द्वारा, और जैसा पहले नोट किया जा चुका है, उन सूचनाओं पर दो मामले पंजीकृत किए गए।

अभियोजन के अनुसार प्रातः यादवों द्वारा दी गई धमकियां उसी दिन दोपहर लगभग 1 बजे कार्य में परिणत हुईं जब पड़ोसी गांवों के लगभग 600 यादवों की भीड़ — उनमें से कुछ घोड़े पर — बंदूकों, पिस्तौलों, भालों एवं लाठियों जैसे हथियारों से लैस होकर आई और लक्ष्मीपुर तौफीर की दोनों बिंद टोलियों पर हमला किया। भीड़ ने नकद, कपड़े, अनाज, आभूषण एवं मवेशी लूटे और तत्पश्चात वहां के निवासियों के घरों में आग लगा दी जिसके परिणामस्वरूप लगभग 200 घर जलकर राख हो गए। तत्पश्चात भीड़ के कुछ सदस्यों ने उन ग्रामवासियों का पीछा किया, जिनमें राम स्वरूप सिंह, अर्जुन सिंह, रामाबाउल सिंह, बहादुर सिंह, सुरेश सिंह, घीबन सिंह, लाल बहादुर सिंह, भूमि सिंह, रामप्रबेश सिंह, रामबिलाश सिंह एवं साधो सिंह शामिल थे, जो नदी की ओर भागने का प्रयास कर रहे थे। जब उपर्युक्त नामित व्यक्ति *तिसरासिया ढाब* (विशाल जल विस्तार) में लगी नावों पर सवार होकर बचने का प्रयास कर रहे थे, दुर्जनों ने उन पर गोली चलाई, उन्हें नावों से नीचे उतारा और फिर

घसीटकर नदी में फेंक दिया। अभियोजन का विशेष मामला यह है कि, अन्य लोगों के साथ, वर्तमान तीनों अपीलार्थी घोड़े पर सवार होकर बंदूकों के साथ आए, भीड़ का नेतृत्व किया और तबाही में सक्रिय भागीदार रहे। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, इस घटना पर भी दो मामले पंजीकृत किए गए, एक जानकी बिंद की रिपोर्ट पर और दूसरा महेंद्र सिंह (पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1) की रिपोर्ट पर।

अभियोजन मामला आगे यह है कि तौफीर बिंद टोली में कोई घटना घटित होने की जानकारी मिलने पर उसी रात एक पुलिस दल वहां गया और बी.के. सिंह (अभियोजन साक्षी-96), एक पुलिस निरीक्षक ने, उप-पुलिस अधीक्षक, मुंगेर के आदेश पर प्रातःकाल की घटना पर पंजीकृत दो मामलों का अन्वेषण प्रारंभ किया। अगले प्रातः उसने दूसरी घटना पर पंजीकृत अन्य दो मामलों का भी अन्वेषण प्रारंभ किया। अन्वेषण करने में उसने, अन्य लोगों में, दो पुलिस उपनिरीक्षकों, यथा — श्याम नारायण प्रसाद (अभियोजन साक्षी-68) एवं नरेश प्रसाद (अभियोजन साक्षी-99) की सहायता ली। अन्वेषण के दौरान अभियोजन साक्षी-96 ने घटनास्थलों का निरीक्षण किया और नक्शे तैयार करवाए। इसके अलावा, उनके निर्देश पर अभियोजन साक्षी-99 ने दुर्जनों द्वारा जलाई गई बड़ी संख्या में झोपड़ियों से जले हुए घरेलू सामान जब्त किए। उसने बकरियों एवं गायों के मृत शवों पर शवपरीक्षण करने के लिए पशु चिकित्सक की सेवाएं मांगीं। वह कथित रूप से दुर्जनों द्वारा वहां फेंके गए व्यक्तियों के शव खोजने एवं बरामद करने के लिए नदी भी गया। अंततः नौ मारे गए लोगों में से छह के शव बरामद हुए और अभियोजन साक्षी-68 द्वारा उनके निर्देश पर उनका जांच-पड़ताल किए जाने के उपरांत उन्हें शवपरीक्षण के लिए भेजा गया। अन्वेषण के दौरान उसने वह करारनामा जब्त किया जिसके अंतर्गत चंद्रदेव सिंह ने प्रश्नगत भूखंडों का बंदोबस्त प्राप्त करने का दावा किया था।

उन पर लगाए गए आरोपों के प्रति दोषी न होने का अभिवचन करते हुए तीनों अपीलार्थियों ने यह दावा किया कि उन्हें मिथ्या रूप से फंसाया गया है और प्रत्येक ने अनुपस्थिति का बचाव अपनाया। अपने मामले के समर्थन में अभियोजन ने 105 साक्षियों की परीक्षा की। उनमें से 22, जो सभी ग्राम तौफीर बिंद टोली के निवासी थे, ने दावा किया कि उन्होंने घटना के दोनों चरण देखे थे जबकि उसी गांव के 47 अन्य ने केवल दूसरे चरण के बारे में साक्ष्य दिया। अपनी बारी में अपीलार्थियों ने भी अपने बचाव के समर्थन में कुछ साक्षियों की परीक्षा की एवं कुछ दस्तावेज प्रदर्शित किए।

श्री जेठमलानी हमें विपुल साक्ष्य एवं अधीनस्थ विद्वान न्यायालयों के निर्णयों के प्रासंगिक भागों के माध्यम से ले गए ताकि हमें साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने एवं तीनों अपीलार्थियों के विरुद्ध साक्ष्य देने वाले साक्षियों की विशेष रूप से विश्वसनीयता के प्रश्न की परीक्षा करने के लिए राजी किया जा सके और यह माना जा सके कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य उनकी दोषसिद्धियों को न्यायोचित नहीं ठहराता। भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार में बैठते हुए हम संपूर्ण मामले को पुनः खोलने और साक्ष्य के शुद्ध मूल्यांकन पर अभिलिखित तथ्यों के समवर्ती निष्कर्षों को विचलित करने में न्यायोचित नहीं होंगे जब तक हम यह न मानें कि वे निष्कर्ष विधि के अनिवार्य उपबंधों की पूर्ण अवहेलना में अभिलिखित किए गए हैं जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को गंभीर पूर्वाग्रह एवं पर्याप्त अन्याय हुआ है। हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराने का अन्य क्षेत्र वह होगा जहां सिद्ध तथ्यों पर विधि का गलत निष्कर्ष निकाला गया हो अथवा तथ्यों पर निष्कर्ष स्पष्टतः विकृत हों और किसी साक्ष्य पर आधारित न हों। तथापि हमने कुछ अभिलेख पर साक्ष्य का श्री जेठमलानी की आलोचना की सराहना करने के लिए एक आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।

अभियोजन साक्षी-5 के पक्ष में भूमि के बंदोबस्त सिद्ध करने के लिए, जो अभियोजन के अनुसार विवाद की उत्पत्ति थी, उसने रत्नेश्वर सिंह (अभियोजन साक्षी-64), सुबोध कुमार

सिंह (अभियोजन साक्षी-65), आनंद सिंह (अभियोजन साक्षी-82) एवं अखिलेश्वर सिंह (अभियोजन साक्षी-83) की परीक्षा की, जो सभी खगड़िया जिले के गांव राजधन के निवासी हैं और प्रश्नगत भूमि के मालिक होने का दावा करते हैं, एवं दिनांक 6.1.1985 को उनके द्वारा निष्पादित दो करारों (प्रदर्श-1 एवं 1/1) को प्रदर्शित किया। उनके साक्ष्य की अभियोजन साक्षी-5 के साक्ष्य के साथ विवेचना करने एवं करारों का अवलोकन करने पर विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन यह सिद्ध करने में सफल रहा कि मौजा बिंद दियारा हरिन मार में स्थित लगभग 30 बीघा भूमि उपर्युक्त भूमि मालिकों द्वारा अभियोजन साक्षी-5 के पक्ष में बंदोबस्त की गई थी। उच्च न्यायालय ने, अपनी बारी में, साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और उपर्युक्त निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिमत व्यक्त किया कि भूमि के बंदोबस्त की कथा को अपीलार्थियों की ओर से गंभीरता से चुनौती नहीं दी गई। वास्तव में, हमारे समक्ष भी तथ्य के उपर्युक्त निष्कर्ष के संबंध में कोई शिकायत नहीं उठाई गई। अभियोजन साक्षी-5 एवं अन्य के साक्ष्य के मूल्यांकन पर विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित अगला निष्कर्ष यह है कि तौफीर करई टोला के कुछ यादव 1984 में जब वह नदी तल से निकली तो उससे जबरन भूमि की खेती कर रहे थे और यादवों ने उस दिन अभियोजन साक्षी-5 एवं उसके साथियों को खदेड़ दिया जब वे 10.11.85 को उस पर फसल उगाने गए थे और उन्हें ऐसा करने की हिम्मत करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी। यह निष्कर्ष भी उच्च न्यायालय में चुनौती नहीं दिया गया और हमारे समक्ष भी इसे चुनौती नहीं दी गई।

यह उपर्युक्त पृष्ठभूमि में है कि 11.11.85 की दो घटनाओं पर विचार किया जाना है। तथापि पहली घटना से संबंधित साक्ष्य का विवरण या विवेचना करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि, स्वीकार्यतः, तीनों अपीलार्थी उसमें शामिल नहीं थे और वास्तव में वे सत्र विचारण सं. 83/86 में सम्मिलित नहीं किए गए थे। यह कहना पर्याप्त है कि उसके संबंध में लाए गए साक्ष्य के उचित मूल्यांकन पर अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा एक समवर्ती निष्कर्ष

अभिलिखित किया गया है कि छह यादवों (जो उस घटना के लिए विचारण का सामना कर रहे थे) ने ग्राम लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली में आग्नेयास्त्रों सहित विभिन्न हथियारों से लैस होकर आए, बलवा किया, दो पर गोलीबारी करके उन्हें घायल करके उनकी हत्या का प्रयास किया और तत्पश्चात ग्रामवासियों को यह खुली धमकी देकर चले गए कि बिंद समुदाय के सदस्यों को समाप्त कर दिया जाएगा। अब इसलिए हम अपना ध्यान दूसरी घटना के संबंध में विचारण के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य एवं सामान्यतः विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा उसके संबंध में एवं विशेष रूप से तीनों अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलिखित निष्कर्षों तक सीमित कर सकते हैं।

कथित रूप से अपराह्न में घटित घटना को दो भागों में विचारित किया जा सकता है: जबकि लक्ष्मीपुर की दोनों बिंद टोलियों (उत्तर एवं दक्षिण) में तबाही को प्रथम भाग माना जा सकता है, तिसरासिया ढाब एवं नदी के किनारे पर हत्यारा हमला दूसरा भाग है। पहले भाग का प्रत्यक्षदर्शी संस्करण देने के लिए अभियोजन ने पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 से 4 सहित गांव के 69 निवासियों के साक्ष्य पर अवलंब किया। उनमें से प्रत्येक ने संपूर्ण गांव में उपद्रवी भीड़ द्वारा किए गए तोड़फोड़ एवं विशेष रूप से उनके अपने घरों की लूट एवं उनमें आग लगाने का विस्तृत विवरण दिया। आक्षेपित निर्णयों का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि न्यायालयों ने उनके साक्ष्य का विस्तार से विवरण एवं विवेचना की, साथ ही डॉ. राणा प्रताप सिंह (अभियोजन साक्षी-43) के साक्ष्य के साथ भी जिन्होंने उनमें से कुछ की परीक्षा की थी और चोटें पाई थीं, डॉ. अमर प्रसाद सिंह (अभियोजन साक्षी-50) जिन्होंने जली हुई गायों एवं बकरियों के शवों पर शवपरीक्षण किया था, बी.के. सिंह (अभियोजन साक्षी-96) अन्वेषण अधिकारी एवं नरेश प्रसाद (अभियोजन साक्षी-99) पुलिस उपनिरीक्षक जिन्होंने अन्वेषण में अभियोजन साक्षी-96 की सहायता की। ऐसे विश्लेषण पर न्यायालयों ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि लगभग 500 से 600 व्यक्तियों की उपद्रवी भीड़ गांव में आई, उनमें से कुछ घोड़े पर सवार थे, आग्नेयास्त्रों सहित घातक हथियारों से लैस थे और उसे घेर

लिया। अभिलिखित दूसरा निष्कर्ष यह है कि तत्पश्चात उपद्रवी भीड़ ने गांव को लूटा, कुछ ग्रामवासियों पर हमला किया और 460 झोपड़ियों में आग लगा दी।

दूसरे भाग का वर्णन एवं साबित करने के लिए, जो अभियोजन के अनुसार भयावह प्रकरण का समापन था, उसने अन्य लोगों के साथ-साथ पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 से 4, झिंगुर सिंह (अभियोजन साक्षी-6), मोती सिंह (अभियोजन साक्षी-8), मेढ़ी सिंह (अभियोजन साक्षी-14), वकील प्रसाद सिंह (अभियोजन साक्षी-17), बनारसी सिंह (अभियोजन साक्षी-18), सारजुग सिंह (अभियोजन साक्षी-19), मोहराइल सिंह (अभियोजन साक्षी-29) एवं सुरेश सिंह (अभियोजन साक्षी-46) के साक्ष्य पर अवलंब किया क्योंकि उन्होंने दावा किया कि उन्होंने तिसरासिया ढाब एवं नदी के किनारे क्या हुआ यह भी देखा था। दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने उनके साक्ष्य का विवरण किया और उसके विस्तृत मूल्यांकन के आधार पर उसे सुसंगत पाया। उस आधार पर न्यायालयों ने माना कि अभियोजन यह सिद्ध करने में सफल रहा कि जब भीड़ गांव में लूट एवं आगजनी कारित करने में संलग्न थी, कुछ ग्रामवासी तिसरासिया ढाब की ओर भाग गए और उनमें से कुछ दुर्जनों द्वारा पीछा किए गए। जिनका पीछा किया जा रहा था उनमें थे — i) रामस्वरूप सिंह, ii) लाल बहादुर सिंह, iii) रामप्रवेश सिंह, iv) रामबिलास सिंह, v) साधो सिंह, vi) अर्जुन सिंह, vii) भूमि सिंह, viii) रामादुल सिंह, ix) शिबोन सिंह (सभी मृत), x) सुखदेव यादव (पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-2), xi) नागेश्वर सिंह (पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-3), xii) मोहारिल सिंह (अभियोजन साक्षी-29), xiii) सुरेश सिंह (अभियोजन साक्षी-46)। पीछा करने वाले सभी सदस्य राइफल, बंदूक, पिस्तौल, भाला आदि से लैस थे और उनमें से कुछ घोड़े पर सवार थे। न्यायालयों द्वारा अभिलिखित अगला निष्कर्ष यह है कि जिनका पीछा किया गया वे तिसरासिया ढाब में एक देशी नाव पर सवार हुए और दूसरी ओर जाने के लिए खेने लगे। इस बीच बलवाई वहां पहुंचे, गोलीबारी की और नाव पर कब्जा कर लिया। जबकि नाव के तीन यात्रियों — पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-2, पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-3 एवं

अभियोजन साक्षी-29 ने नदी में कूदकर उनके चंगुल से बचाव किया, अन्य दस को पकड़ लिया गया और उनमें से कुछ पर गोली चलाई गई जिसके परिणामस्वरूप अर्जुन सिंह एवं भूमि सिंह वहीं मर गए। तत्पश्चात दुर्जन जबरन अन्य को नदी के किनारे की ओर ले गए। वहां उन पर गोली चलाई गई और अन्य हथियारों से भी हमला किया गया। फिर उनमें से कुछ को नदी में फेंक दिया गया। अगले दिन नौ मारे गए लोगों में से छह के शव नदी से बरामद हुए जबकि अभियोजन साक्षी-46 उसके किनारे पर चोटों के साथ बेहोश पड़ा मिला।

उपर्युक्त निष्कर्षों पर आक्षेप करते हुए श्री जेठमलानी ने पहले यह तर्क दिया कि दोनों अधीनस्थ न्यायालयों को पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 के साक्ष्य पर विचार एवं अवलंब नहीं करना चाहिए था क्योंकि वह स्पष्ट रूप से अग्राह्य था। अपना तर्क विस्तारित करते हुए श्री जेठमलानी ने प्रस्तुत किया कि न्यायालय में परीक्षित किए जाते समय साक्षी को दिनांक 12.11.1985 की प्रातः पुलिस के पास दर्ज कराई उस रिपोर्ट (प्रदर्श 10/1) से अपनी स्मृति ताजा करने की अनुमति दी गई, जिसे दूसरी घटना की प्राथमिकी के रूप में माना गया था यद्यपि किसी भी कल्पना से उस रिपोर्ट को ऐसा नहीं माना जा सकता था, क्योंकि अभियोजन साक्षी-96 ने पूर्व रात्रि ही उसका अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था। इसका अनिवार्य अर्थ था कि प्रदर्श 10/1 एक बयान था जो अन्वेषण के दौरान पुलिस अधिकारी को दिया गया था और संहिता की धारा 162(1) के दृष्टिगत उसके कर्ता का खंडन करने के प्रयोजन को छोड़कर किसी अन्य प्रयोजन के लिए नहीं पढ़ा जा सकता था, श्री जेठमलानी ने तर्क दिया। अपने तर्क के समर्थन में श्री जेठमलानी ने *जहीरुद्दीन बनाम एम्परर,* ए.आई.आर. 1947 पी.सी. 75 में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर अवलंब किया। ऐसा प्रतीत होता है कि क्या प्रदर्श 10/1 को प्राथमिकी के रूप में माना जा सकता था, यह प्रश्न विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय दोनों के समक्ष उठाया गया था और उसका सकारात्मक उत्तर दिया गया था। न्यायालयों ने माना कि दिनांक 11.11.1985 की रात, अभियोजन साक्षी-96 ने उस अपराह्न घटित घटना के संबंध में किसी साक्षी की परीक्षा नहीं की और वास्तव में उसने उसके

अन्वेषण की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया क्योंकि वह एवं अन्य पुलिस अधिकारी गांव में कानून और व्यवस्था बनाए रखने में व्यस्त थे।

अभियोजन साक्षी-96 के साक्ष्य का अवलोकन करने पर हम यह कहने के लिए विवश हैं कि अधीनस्थ न्यायालय प्रदर्श 10/1 को प्राथमिकी के रूप में मानने में न्यायोचित नहीं थे। निर्विवाद रूप से अभियोजन साक्षी-96 प्रातःकाल की घटना पर पंजीकृत दो मामलों का अन्वेषण करने के लिए दिनांक 11.11.1985 की रात ग्राम लक्ष्मीपुर बिंद टोली पहुंचे थे। उन्होंने कथन किया कि रात्रि 10:30 बजे गांव पहुंचने के उपरांत उन्हें दूसरी घटना के बारे में भी जानकारी मिली और उसके संबंध में उन्होंने कई व्यक्तियों से बात की। तथापि, उन्होंने यह कहा कि जिन व्यक्तियों से उन्होंने बात की उनके बयान अभिलिखित नहीं किए। प्रति-परीक्षण में उनसे यह निकलवाया गया कि उसी रात उन्हें पता चला कि कुछ लोगों के घर लूटे गए और जलाए गए, कुछ लोगों की हत्या हुई और कुछ ग्रामवासी लापता हैं। आगे प्रति-परीक्षित किए जाने पर उन्होंने स्वतः कहा कि उन्होंने उसी रात दूसरी घटना पर पंजीकृत मामले का अन्वेषण प्रारंभ कर दिया था। अभियोजन साक्षी-96 के ऐसे स्वीकरणों एवं दूसरी घटना के संबंध में उनके द्वारा उठाए गए अन्वेषण के विभिन्न कदमों के मद्देनजर इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि अगले प्रातः पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 द्वारा दर्ज कराई गई रिपोर्ट को केवल संहिता की धारा 161(3) के अनुसार अभिलिखित बयान के रूप में माना जा सकता है न कि प्राथमिकी के रूप में। अतः अगला प्रश्न यह है कि क्या पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 का साक्ष्य श्री जेठमलानी के तर्कानुसार अग्राह्य है।

जहीरुद्दीन (उपरोक्त) के मामले में पुलिस ने प्रमुख साक्षी का बयान, जो स्वीकार्यतः अन्वेषण के दौरान अभिलिखित किया गया था, उस पर उसके हस्ताक्षर करवा कर प्राप्त किया था। इसके अलावा, विचारण के दौरान मुख्य-परीक्षण में परीक्षित होते समय उसने उस बयान से अपनी स्मृति ताजा की। विचारण एक निष्कर्ष के साथ दोषमुक्ति में परिणत हुआ कि जब

कोई पुलिस अधिकारी किसी साक्षी से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के उल्लंघन में हस्ताक्षरित बयान प्राप्त करता है तो उसके साक्ष्य को अस्वीकार किया जाना चाहिए। अपील में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को यह मानते हुए अपास्त कर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 के उपबंधों के उल्लंघन स्वयं में अनिवार्यतः कार्यवाही के लिए घातक नहीं थे और उचित परिस्थितियों में उन्हें 1898 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 537 (संहिता की धारा 465) की अभिव्यक्ति के रूप में उपचारित किया जा सकता था। उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त करते हुए प्रिवी काउंसिल ने निम्नानुसार अभिमत व्यक्त किया:

> "...... धारा 162(1) के उल्लंघन का प्रभाव उस निषेध पर निर्भर करता है जिसका उल्लंघन किया गया है। यदि उल्लंघन पुलिस को दिए गए बयान पर, जो लिखित में उतारा गया हो, हस्ताक्षर करने में निहित है, तो बयान करने वाले साक्षी का साक्ष्य अग्राह्य नहीं होता। न धारा में और न ही विधि में कहीं अन्यत्र ऐसे कोई शब्द हैं जो ऐसा परिणाम व्यक्त या निहित करते हों। इससे भी कम यह कहा जा सकता है कि जब किसी साक्षी द्वारा ऐसा बयान हस्ताक्षर किया गया हो तो विधि का संपूर्ण कार्यवाही को दोषपूर्ण करने का प्रभाव है। किंतु ऐसे बयान पर हस्ताक्षर के विरुद्ध इस वैधानिक सुरक्षा के उल्लंघन के परिणामस्वरूप उसके साक्ष्य का मूल्य गंभीर रूप से क्षीण हो सकता है। *किसी साक्षी द्वारा साक्ष्य देते समय पुलिस को उसके द्वारा दिए गए बयान का उपयोग भिन्न विचार उठाता है। यदि ऐसे बयान पर निर्भरता रखी जाए जिसका साक्षी ने विचारण में साक्ष्य देते समय सारवान उपयोग किया हो, तो ऐसे उपयोग की स्पष्ट मनाही केवल निरस्त कर दी जाएगी। जब इसलिए, दंडाधिकारी या पीठासीन न्यायाधीश पाता है कि किसी साक्षी ने साक्ष्य देते समय ऐसे बयान का सारवान उपयोग किया है तो धारा के अंतर्गत उसका कर्तव्य है कि उस साक्षी के साक्ष्य को अग्राह्य के रूप में अनदेखा करे।* वर्तमान मामले में श्री रॉय

की मुख्य-परीक्षण के अंत में नोट में और दंडाधिकारी के निर्णय में जो तथ्य के निष्कर्ष के समतुल्य है, यह है कि श्री रॉय ने साक्ष्य देते समय पुलिस को दिए गए हस्ताक्षरित बयान का पर्याप्त एवं सारवान उपयोग किया था, और दंडाधिकारी उसके साक्ष्य को अनदेखा करने के लिए तदनुसार बाध्य था। दंडाधिकारी का ऐसा करने का कारण बहुत व्यापक रूप से कहा गया है क्योंकि यह केवल यह तथ्य नहीं है कि श्री रॉय ने बयान पर हस्ताक्षर किए थे बल्कि यह तथ्य है कि उसने इसे अपने सामने रखा था और साक्षी कटघरे में उससे परामर्श किया जो उसके साक्ष्य को अक्षम बनाता है।"

(बल दिया गया)

हमारे सुविचारित मत में उपरोक्त उद्धृत अनुच्छेद वर्तमान अपीलार्थियों के लिए किसी सहायता का नहीं है क्योंकि वर्तमान मामले में पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 के घटना के बारे में साक्ष्य देने के उपरांत, अभियोजन ने पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 के बयान को प्रदर्श 10/1 के रूप में प्रदर्शित करवाया क्योंकि उसके अनुसार प्रदर्श 10/1 प्राथमिकी थी। ऐसा अभिगम साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के दृष्टिगत साक्षी की संपुष्टि करने के लिए अभियोजन को विधिक रूप से अनुज्ञेय था। निःसंदेह किसी दिए गए मामले में — जैसा वर्तमान मामले में है — न्यायालय परवर्ती सामग्री के आधार पर यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि इस प्रकार अभिलिखित बयान को प्राथमिकी के रूप में नहीं माना जा सकता और संहिता की धारा 162 के दृष्टिगत संपुष्टि के साक्ष्य के रूप में उसे अपने विचार से बाहर कर सकता है किंतु उस आधार पर अकेले किसी साक्षी के साक्ष्य को अग्राह्य नहीं माना जा सकता। *जहीरुद्दीन* का मामला (उपरोक्त) अपने विशेष तथ्यों पर निर्णीत हुआ, विशेष रूप से इस तथ्य पर कि उसकी मुख्य-परीक्षण के दौरान साक्षी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अंतर्गत अभिलिखित बयान से अपनी स्मृति ताजा करने की अनुमति दी गई थी, जो

वर्तमान मामले से भिन्न है जहां बयान पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-1 के अपनी स्मृति से तथ्यों के बारे में साक्ष्य देने के उपरांत साक्ष्य में स्वीकार किया गया था।

श्री जेठमलानी ने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक अभियोजन मामला तिसरासिया ढाब में नाव पर भागने का प्रयास कर रहे ग्रामवासियों पर हमले से संबंधित था, वह बिल्कुल असत्य था क्योंकि, यद्यपि अभियोजन साक्षियों ने दावा किया कि नाव पर कब्जा करने और उसके यात्रियों को उतारने के उपरांत बलवाइयों ने उन पर गोली चलाई जिसके परिणामस्वरूप अर्जुन सिंह एवं भूमि सिंह वहीं गिर कर मर गए और उनके शव नदी से बरामद हुए। श्री जेठमलानी के अनुसार, यदि साक्षियों के साक्ष्य पर विश्वास किया जाए तो वे शव तिसरासिया ढाब में ही मिलने चाहिए थे न कि नदी में क्योंकि, स्वीकार्यतः, पूर्व का पानी उत्तरवर्ती में नहीं बहता। अभियोजन साक्षी-96 के साक्ष्य सहित अभिलेख पर साक्ष्य का अवलोकन करने पर हम उपर्युक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। तिसरासिया ढाब एवं नदी के किनारे घटना के बारे में बोलने वाले साक्षियों के साक्ष्य का संकलन करने पर हम पाते हैं कि जिन लोगों पर गोली चलाई गई उन सहित नाव से उतारे गए सभी 10 व्यक्तियों को नदी के किनारे ले जाया गया था। उपर्युक्त साक्ष्य पुनः अभियोजन साक्षी-96 के साक्ष्य द्वारा संपुष्ट होता है, जिन्होंने दोनों स्थानों, यथा — तिसरासिया ढाब एवं नदी के किनारे के बीच घसीटने के निशान एवं पैरों के निशान देखे जाने का कथन किया। नदी में अर्जुन सिंह एवं भूमि सिंह के शवों का पाया जाना, इसलिए, अभियोजन के इस मामले का खंडन नहीं करता कि उन दो व्यक्तियों पर तिसरासिया ढाब में गोली चलाई गई थी।

श्री जेठमलानी का अगला तर्क था कि अभियोजन साक्षी-46 का साक्ष्य पूर्णतः अविश्वसनीय था और अधीनस्थ न्यायालयों को उस पर अवलंब नहीं करना चाहिए था। चूंकि श्री जेठमलानी का यह तर्क विशेष रूप से अपीलार्थी रणबीर यादव की दोषसिद्धि के लिए उसके साक्ष्य की स्वीकृति के विरुद्ध निर्देशित है, हम उस पर अपीलार्थियों के मामले को

अलग-अलग निपटाते समय विचार करेंगे। जैसा पहले उल्लेख किया गया, दूसरी घटना के बारे में साक्ष्य देने वाले प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य अत्यधिक विसंगतिपूर्ण एवं अविश्वसनीय था और इसलिए उस पर अवलंब नहीं किया जाना चाहिए था — अधीनस्थ न्यायालयों के निष्कर्षों के विरुद्ध श्री जेठमलानी की इस अंतिम आलोचना के बारे में यह पता लगाने के लिए कि क्या तर्क अभिलेख द्वारा सिद्ध था, हमने इस न्यायालय के *शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य,* ए.आई.आर. 1973 एस.सी. 2622 में निम्नलिखित टिप्पणियों के आलोक में अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया क्योंकि यह इस मामले में भी पूर्णतः लागू होता है:

> "...... हत्या का दृश्य ग्रामीण है, मामले के साक्षी ग्रामीण हैं और इसलिए उनके आचरण के प्रतिरूप एवं बोधात्मक आदतों का उसी प्रकार निर्णय किया जाना चाहिए। मानव आचरण के बारे में अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित न्यायालयों में परिचित शीर्ष परिष्कृत दृष्टिकोण स्पष्टतः हमारे गांवों के सुस्त तरीकों के आदी लोगों पर लागू नहीं किए जा सकते। विभिन्न साक्षियों के साक्ष्य का परीक्षण करते समय हमें यह ध्यान दिलाना होगा कि हाशिये पर विचलन, विवरणों में विसंगतियां, कथनों में विरोधाभास एवं आवश्यक भागों में अलंकरण उस परिसाक्ष्य के सार की सच्चाई के विरुद्ध नहीं जा सकते जब तक कि दिए गए परिसाक्ष्य के सारभूत ताने-बाने में सत्यता की छाप एवं संभाव्यता के अनुरूपता हो।"

ऐसे परीक्षण पर हम पाते हैं कि अभियुक्त/अपीलार्थियों की ओर से उठाए गए विभिन्न तर्कों की सावधानीपूर्वक जांच की गई है, संबंधित साक्षियों द्वारा दिए गए साक्ष्य को सही ढंग से व्यवस्थित एवं मूल्यांकित किया गया है और उनमें त्रुटियों एवं विरोधाभासों की बारीकी से संवीक्षा की गई है। चूंकि पहले विस्तृत समवर्ती निष्कर्ष ऐसे अभ्यास पर पहुंचे हैं, हम उन्हें

विचलित करने का कोई आधार या औचित्य नहीं पाते। अब इसलिए हम अपना ध्यान व्यक्तिगत अपीलार्थी के मामले की ओर मोड़ सकते हैं।

आपराधिक अपील सं. 34/1992 में अपीलार्थी रणबीर यादव की दोषसिद्धि पर आक्षेप करते हुए श्री जेठमलानी ने इंगित किया कि उसे जो एकमात्र प्रत्यक्ष कार्य आरोपित किया गया था वह यह था कि उसने सुरेश सिंह (अभियोजन साक्षी-46) पर लाठी से हमला किया, उसकी गर्दन मरोड़ी और फिर उसे नदी में फेंक दिया; और इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए अभियोजन केवल उसके साक्ष्य पर निर्भर था। उन्होंने तर्क दिया कि अधीनस्थ न्यायालयों को उसके साक्ष्य को इसलिए स्वीकार नहीं करना चाहिए था: पहला, क्योंकि अभियोजन ने स्वयं उसे अविश्वसनीय पाया था और उसका विस्तृत प्रति-परीक्षण किया था; और दूसरा, क्योंकि उसके द्वारा दी गई हमले की कथा डॉ. अख्तर अहमद (अभियोजन साक्षी-63) के साक्ष्य द्वारा झुठलाई गई थी जिन्होंने उसकी परीक्षा की थी। आपराधिक अपील सं. 35/1992 में अपीलार्थी सुखदेव यादव के मामले से निपटते हुए उन्होंने तर्क दिया कि उसके विरुद्ध एकमात्र आरोप यह था कि उसने अर्जुन सिंह को गोली मारकर उसे नीचे गिरा दिया किंतु अभियोजन साक्षी-63 का साक्ष्य जिन्होंने उसके शव पर शवपरीक्षण किया था, यह दर्शाता है कि उसके शरीर पर कोई आग्नेयास्त्र चोट नहीं थी। आपराधिक अपील सं. 36/1992 में अपीलार्थी पांडव यादव के संबंध में उन्होंने यह तर्क दिया कि उसे जो एकमात्र भाग आरोपित किया गया था वह यह था कि उसने एवं दो अन्य ने भूमि सिंह पर गोली चलाई और उसे मार डाला किंतु चिकित्सीय साक्ष्य यह प्रकट करता है कि केवल एक आग्नेयास्त्र चोट थी। श्री जेठमलानी के अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अंतर्गत किसी व्यक्ति को दोषसिद्ध करने के लिए अभियोजन को यह सिद्ध करना होगा कि उसने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में एक प्रत्यक्ष कार्य किया है। उस संदर्भ में परखे जाने पर, उन्होंने प्रस्तुत किया, तीनों अपीलार्थियों में से किसी की भी दोषसिद्धि साक्षियों के अत्यधिक विसंगतिपूर्ण एवं अविश्वसनीय साक्ष्य के दृष्टिगत संधार्य नहीं हो सकती जो तीनों अपीलार्थियों द्वारा कारित

प्रत्यक्ष कार्यों के बारे में बोले। इस तर्क के समर्थन में उन्होंने *बलादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. (1956) एस.सी. 181 में इस न्यायालय के निर्णय पर अत्यधिक बल दिया। उस मामले में इस न्यायालय ने माना कि यह सुस्थापित था कि किसी सभा में केवल उपस्थिति किसी व्यक्ति को विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य नहीं बनाती जब तक यह न दर्शाया जाए कि उसने कुछ किया या करने से चूका जो उसे विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य बनाए जब तक मामला भारतीय दंड संहिता की धारा 142 के अंतर्गत न आए। यह आगे माना गया कि अभियोजन के लिए इस निष्कर्ष की ओर इंगित करने वाला साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक था कि अभियुक्त ने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में कोई प्रत्यक्ष कार्य किया था या कर रहा था।

यदि विधि का उपरोक्त उद्धृत प्रस्ताव अभी भी क्षेत्र में प्रचालित होता तो हमारे लिए यह आवश्यक हो सकता था कि हम प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य की बारीकी से जांच करें जहां तक यह प्रत्येक अपीलार्थी द्वारा कथित रूप से कारित प्रत्यक्ष कार्य सिद्ध करने का प्रयास करता है, यह पता लगाने के लिए कि क्या अधीनस्थ विद्वान न्यायालय उसे स्वीकार करने में न्यायोचित थे। किंतु भारतीय दंड संहिता की धारा 141 एवं 149 को *बलादीन* के मामले (उपरोक्त) में दी गई उपरोक्त व्याख्या को इस न्यायालय की चार न्यायाधीशों की पीठ द्वारा *मसालती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. (1965) एस.सी. 202 में निम्नानुसार स्पष्ट किया गया:

> "ऐसा प्रतीत होता है कि बलादीन के मामले में (एस) ए.आई.आर. (1956) एस.सी. 181 अपीलार्थियों के परिवार के सदस्य एवं गांव के अन्य निवासी एक साथ एकत्रित हुए थे; उनमें से कुछ ने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को साझा किया जबकि अन्य केवल निष्क्रिय साक्षी थे। ऐसी सभा से निपटते हुए, इस न्यायालय ने अभिमत व्यक्त किया कि उस प्रकार की सभा में किसी व्यक्ति की उपस्थिति

अनिवार्यतः यह नहीं दर्शाती कि वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य था। जिस व्यक्ति पर विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य होने का आरोप है, उसके विरुद्ध जो सिद्ध किया जाना चाहिए वह यह है कि वह उन व्यक्तियों में से एक था जो सभा का गठन कर रहे थे और उसने सभा के अन्य सदस्यों के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 141 द्वारा परिभाषित सामान्य उद्देश्य को अपनाया था। धारा 142 उपबंध करती है कि जो कोई भी, ऐसे तथ्यों की जानकारी होने पर जो किसी सभा को विधिविरुद्ध जमाव बनाते हैं, जानबूझकर उस सभा में शामिल होता है, या उसमें बना रहता है, वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, पांच या अधिक व्यक्तियों की सभा जो धारा 141 के पांच खंडों द्वारा निर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों से प्रेरित एवं उन्हें अपनाने वाली हो, विधिविरुद्ध जमाव है। ऐसे मामले में निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सभा में पांच या अधिक व्यक्ति थे और क्या उक्त व्यक्तियों ने धारा 141 द्वारा निर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों को अपनाया था। इस प्रश्न का निर्धारण करते समय यह विचार करना प्रासंगिक हो जाता है कि क्या सभा में कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो केवल निष्क्रिय साक्षी थे और जो सभा के सामान्य उद्देश्य को अपनाने का आशय किए बिना मात्र निरर्थक जिज्ञासावश उसमें शामिल हुए थे। *यह उसी संदर्भ में है कि इस न्यायालय द्वारा बलादीन के मामले में (एस) ए.आई.आर. (1956) एस.सी. 181 में की गई टिप्पणियां महत्व ग्रहण करती हैं; अन्यथा, विधि में, यह कहना सही नहीं होगा कि किसी व्यक्ति को विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य माने जाने से पूर्व, यह दर्शाया जाना चाहिए कि उसने वास्तव में सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में कोई अवैध प्रत्यक्ष कार्य किया था या किसी अवैध लोप का दोषी था। वास्तव में धारा 149 यह स्पष्ट करती है कि यदि विधिविरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा उस जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में, या ऐसा जो उस जमाव के सदस्य उस उद्देश्य के*

> *अग्रसरण में कारित होने की संभावना जानते थे, कोई अपराध कारित किया जाता है, तो प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के कारित होने के समय उसी जमाव का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है: और यह दृढ़तापूर्वक इस सिद्धांत को सामने लाता है कि धारा 149 द्वारा निर्धारित दंड एक अर्थ में प्रतिनिधि है और हमेशा इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध वास्तव में विधिविरुद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्य द्वारा कारित किया गया था।* इसलिए, हम संतुष्ट हैं कि बलादीन के मामले में (एस) ए.आई.आर. (1956) एस.सी. 181 में की गई टिप्पणियां उस मामले के विशेष तथ्यों के संदर्भ में पढ़ी जानी चाहिए और उन्हें ऐसा अयोग्य विधि का प्रस्ताव प्रतिपादित करने वाला नहीं माना जा सकता जैसा श्री साहनी सुझाते हैं।"
>
> (बल दिया गया)

उपरोक्त उद्धृत सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा *लालजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* ए.आई.आर. (1989) एस.सी. 754 में निम्नलिखित शब्दों के साथ पुनः प्रतिपादित किया गया:

> "धारा (भारतीय दंड संहिता की धारा 149) की दो आवश्यकताएं विधिविरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा अपराध का कारित होना और ऐसा अपराध उस जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में कारित होना चाहिए या ऐसा होना चाहिए जिसे उस जमाव के सदस्य कारित होने की संभावना जानते थे। प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्यतः दोषी नहीं है बल्कि केवल वे जो सामान्य उद्देश्य साझा करते हैं। *जमाव का सामान्य उद्देश्य भारतीय दंड संहिता की धारा 141 में उल्लिखित पांच उद्देश्यों में से एक होना चाहिए। विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य जमाव की प्रकृति, उनके द्वारा प्रयुक्त हथियारों एवं घटनास्थल पर या उससे पहले जमाव के आचरण से जाना जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों से निकाला जाने वाला निष्कर्ष है।*

धारा 149 विधिविरुद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्य को अपराध के कारित होने के समय उस अपराध का दोषी बनाती है। इस प्रकार यह धारा एक विशिष्ट एवं पृथक अपराध सृजित करती है। दूसरे शब्दों में, इसने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किसी अन्य सदस्य द्वारा कारित अवैध कार्यों के लिए विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों का रचनात्मक या प्रतिनिधि दायित्व सृजित किया। तथापि, विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों का प्रतिनिधि दायित्व केवल विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किए गए कार्यों तक या ऐसे अपराधों तक विस्तारित होता है जिन्हें विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य उस उद्देश्य के अग्रसरण में कारित होने की संभावना जानते थे। *एक बार जब किसी व्यक्ति का मामला धारा के संघटकों के अंतर्गत आ जाता है तो यह प्रश्न कि उसने अपने हाथों से कुछ नहीं किया, अप्रासंगिक होगा। वह यह बचाव नहीं उठा सकता कि उसने विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में कारित अपराध को अपने हाथों से नहीं किया या ऐसे जो जमाव के सदस्य उस उद्देश्य के अग्रसरण में कारित होने की संभावना जानते थे।* प्रत्येक को उन कार्यों के संयोजन के संभाव्य एवं प्राकृतिक परिणामों का आशय रखने वाला माना जाना चाहिए जिनमें वह शामिल हुआ। *यह आवश्यक नहीं है कि विधिविरुद्ध जमाव बनाने वाले सभी व्यक्ति कोई प्रत्यक्ष कार्य करें। जब अभियुक्त व्यक्ति लाठियों से लैस होकर एक साथ एकत्रित हुए और शिकायतकर्ता पक्ष पर हमले में शामिल थे, तो अभियोजन यह साबित करने के लिए बाध्य नहीं है कि कौन सा विशिष्ट प्रत्यक्ष कार्य किस अभियुक्त ने किया।* यह धारा विधिविरुद्ध जमाव के एक सदस्य को प्रत्येक के एवं सभी के कार्यों के लिए मुख्य के रूप में उत्तरदायी बनाती है, केवल इसलिए कि वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य है। जबकि प्रत्यक्ष कार्य एवं सक्रिय भागीदारी अपराध कारित करने वाले व्यक्ति की सामान्य आशय का संकेत दे सकती है, विधिविरुद्ध जमाव में केवल उपस्थिति धारा 149 के अंतर्गत प्रतिनिधि आपराधिक

दायित्व आरोपित कर सकती है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 149 के अंतर्गत रचनात्मक अपराध का आधार अपेक्षित सामान्य उद्देश्य या ज्ञान के साथ विधिविरुद्ध जमाव की केवल सदस्यता है।"

(बल दिया गया)

न्यायालय ने तत्पश्चात अपने समक्ष मामले के तथ्यों पर विचार किया और यह अभिमत व्यक्त किया कि यह मानने के उपरांत कि अपीलार्थी ने हिंसा का सहारा लेने के सामान्य उद्देश्य के साथ घातक हथियार लेकर विधिविरुद्ध जमाव बनाया, उच्च न्यायालय के लिए यह खुला नहीं था कि कुछ सदस्यों को इस आधार पर दोषमुक्त कर दे कि उन्होंने कोई हिंसक कार्य नहीं किया या उनकी भागीदारी की कोई संपुष्टि नहीं थी।

भारतीय दंड संहिता की धारा 149 को दी गई उपरोक्त व्याख्या के दृष्टिगत हमें श्री जेठमलानी द्वारा उठाए गए इस तर्क में प्रवेश करने या उसका निर्णय करने की आवश्यकता नहीं है कि वर्तमान तीनों अपीलार्थियों में से प्रत्येक को आरोपित विशिष्ट प्रत्यक्ष कार्यों के संबंध में साक्ष्य विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के समूह का साक्ष्य — जिस पर दोनों अधीनस्थ न्यायालयों ने विचार किया एवं स्वीकार किया — ने निर्णायक रूप से सिद्ध किया कि तीनों अपीलार्थियों ने लूट, आगजनी एवं हत्या कारित करने और हत्या के साक्ष्य को विलुप्त कराने के अपराध कारित करने के विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को साझा किया और उन सामान्य उद्देश्यों के अग्रसरण में उस विधिविरुद्ध जमाव के कुछ सदस्यों ने वे अपराध कारित किए जिनके लिए अपीलार्थी भी भारतीय दंड संहिता की धारा 149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किए जाने के दायित्वाधीन हैं। यहां तक कि यदि हम सुरेश सिंह (अभियोजन साक्षी-46) के साक्ष्य को छोड़ दें जिसने तीनों अपीलार्थियों द्वारा कारित प्रत्यक्ष कार्यों के बारे में साक्ष्य दिया था, पूर्व न्यायालय अभियोजन साक्षी-2 के जिसने अपीलार्थी पांडव यादव एवं सुखदेव यादव के प्रत्यक्ष कार्यों के बारे में बोला था और पूर्व न्यायालय

अभियोजन साक्षी-1 एवं अभियोजन साक्षी-19 के जो सुखदेव यादव के प्रत्यक्ष कार्य के बारे में कथन दिए, तब भी अन्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के परिसाक्ष्य हैं, जिनका पहले संदर्भ दिया जा चुका है और जो विश्वसनीय पाए गए हैं, जिन्होंने तीनों अपीलार्थियों को, अन्य लोगों के साथ, विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य के रूप में पहचाना। उनके साक्ष्य को स्थानांतरित करने एवं दिनांक 11.11.1985 की अपराह्न घटित घटना से पूर्व की घटनाओं की पृष्ठभूमि में उस पर विचार करने के उपरांत हम पाते हैं कि निम्नलिखित निष्कर्ष अनिवार्य हैं: (i) 500/600 लोगों की भीड़, जिनमें से अधिकांश यादव समुदाय के थे और विभिन्न गांवों के निवासी थे, बिंद समुदाय को समूल नष्ट करने के लिए पड़ोसी ग्राम लक्ष्मीपुर तौफीर बिंद टोली पर आई और उस पर हमला किया; (ii) तीनों अपीलार्थी जो यादव समुदाय से संबंधित हैं और तीन अलग-अलग आसन्न गांवों के निवासी हैं, घोड़े पर सवार होकर आग्नेयास्त्रों से लैस होकर आए और कुछ अन्य लोगों के साथ भीड़ का नेतृत्व किया; और (iii) अपीलार्थी भी उन बलवाइयों में थे जिन्होंने ग्रामवासियों का पीछा किया और तिसरासिया ढाब एवं नदी के किनारे हत्याएं कीं।

उपरोक्त निष्कर्ष निकालने में हमने *बजवा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,* [1973] 3 एस.सी.आर. 571 में इस न्यायालय के निर्णय के निम्नलिखित अनुच्छेद को ध्यान में रखा है जिसकी ओर श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया।

> "जो साक्ष्य हमें न्यायालय में विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दिखाया गया है उसकी हमने सावधानी एवं चिंता के साथ जांच की है क्योंकि ऐसे मामलों में जहां वर्तमान जैसे दलबंदी होती है, जैसा प्राधिकृत निर्णयों में अक्सर देखा गया है, निर्दोष को दोषी के साथ सम्मिलित करने की प्रवृत्ति होती है और न्यायालय के लिए ऐसे खतरे से बचाव करना अत्यंत कठिन होता है। इस जोखिम के विरुद्ध कि निर्दोष को दोषी के साथ दोषी न ठहराया जाए, एकमात्र वास्तविक सुरक्षा स्वीकार्य साक्ष्य पर जोर देने

में निहित है जो कुछ हद तक ऐसे अभियुक्त को फंसाती हो और न्यायालय के विवेक को संतुष्ट करे। (देखें *कश्मीरा सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं भवान साहू बनाम राजा*)। वर्तमान मामले में, निःसंदेह घटना देखने का दावा करने वाले अभियोजन साक्षियों ने सभी अपीलार्थियों का नाम लिया है और मुखबिर ने उन्हें भी नाम दिया है जिन्हें उच्च न्यायालय ने दोषमुक्त किया था, किंतु हमारे विचार में उन्हीं को दोषसिद्ध करना सुरक्षित होगा जो सक्रिय भाग लेने वाले बताए गए हों और जिनकी पहचान के बारे में कोई उचित संदेह न हो।"

उपर्युक्त विवेचना के लिए तीनों अपीलार्थियों के विरुद्ध आक्षेपित दोषसिद्धियों एवं दंडादेशों को बरकरार रखा जाना चाहिए। प्रासंगिक रूप से हम यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि तीनों अपीलार्थियों में से प्रत्येक द्वारा अपनाया गया अनुपस्थिति का बचाव उसके समर्थन में प्रस्तुत साक्ष्य के उचित विचार पर दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पूर्णतः असंधार्य पाया गया। वास्तव में श्री जेठमलानी ने इस निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी।

परिणामतः, अपीलें खारिज की जाती हैं।

आपराधिक विविध याचिका सं. 2423/93 एवं आपराधिक विविध याचिका सं. 2424-25/94।

चूंकि आपराधिक अपीलें खारिज कर दी गई हैं, इसलिए इनसे संबंधित दायर ये विविध याचिकाएं निपटाई हुई मानी जाती हैं।

आर.ए. याचिका खारिज कर दी गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।